हरि: इलैक्ट्रो कम्प्यूटर्स

दी माल–सोलन (हि.प्र.) 173212

फोन : 01792-222228, 226228, 98050-22028

वैज्ञानिक परम्परा सुमन–[illegible]

मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

डॉ. लेखराम शर्मा, पूर्व प्राचार्य

वैज्ञानिक परम्परा सुमन–5

मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

डॉ. लेखराम शर्मा दर्शनाचार्य
एम.ए. (संस्कृत हिन्दी) पी.एच.डी.

पूर्व प्राचार्य,
राजकीय संस्कृत महाविद्यालय,
(नाहन–सोलन)

वैज्ञानिक परम्परा सुमन–5

मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

लेखक :
डॉ. लेखराम शर्मा,
पूर्व प्राचार्य,

प्रकाशक :
आराधनम्
गांव धाला, डा. देवठी,
तह. व जिला सोलन (हि.प्र.)

सम्पर्क : 098050–17550

मूल्य : केवल दो सौ रूपए (मात्र मुद्रण व्यय)

डिजाईनिंग व प्रिन्टिंग :–
हरिः इलैक्ट्रो कम्प्यूटर्स
विपरीत ऑरियन्ट इन्शोरैन्स, दी माल सोलन
तह. व जिला सोलन (हि.प्र.) 173212
फोन : 01792–222228, 226228, 98050–22028

शूलिनी बुक स्टोर सोलन से प्राप्त मेरे द्वारा पूर्व लिखित पुस्तकें

पुस्तक	**मूल्य**
क्षेत्रापति बीजेश्वर महादेव	60 / –
(सोलन क्षेत्र के पारंपरिक प्रधान देवता की जानकारी)	
जय बघाटेश्वरी मां शूलिनी	95 / –
(सोलन क्षेत्र की पारंपरिक प्रधान देवी की जानकारी)	

शूलिनी बुक स्टोर, राजगढ़ रोड, सोलन (हि.प्र.)
फोन : 92180–32892

लेखकीय

पिछली चार पुस्तकों के माध्यम से आप सभी प्रिय पाठक भाई–बहनों का जो प्यार भरा प्रोत्साहन मिला, उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। सोलन के जन–जीवन, परम्पराओं, भावनाओं और विचारों पर आधारित यह पांचवां पुष्प आपके करकमलों में सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। सोलन के सम्मान्य सेवा निवृत्त लोकसम्पर्क अधिकारी, विद्वान्, इतिहासविद् और साहित्यकार श्री शिवसिंह चौहान जी का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने न केवल मेरे लेखन कार्य का अवलोकन किया बल्कि प्रोत्साहित भी किया। टाईप व डीजाइनिंग सौजन्य हेतु श्रीहरिः प्रिन्टर्स और विक्रयार्थ क्रमशः पं. श्री सतीश जी, श्रीमती शारदा जी और पुजारी पं. श्री मनीराम जी का तथा विभिन्न सूचनाओं हेतु विविध रचनाकारों का भी कृतज्ञ हूँ। इस पुष्प में मैंने सोलन की जीवन साधना को राष्ट्र और मानवता से जोड़ने का प्रयास किया है। आशा है आपको पहले की तरह पसन्द आएगा।

Acharya Krishan Kant Attri MBE

Hindu Chaplain
Armed Forces United Kingdom

HEADQUARTERS
CATTERICK GARRISON
Peronne House
Scotton Road,
Catterick,
North Yorkshire DL9 3JS

Tel: 01748 872909
Tel: Mil 94731 2309
Mob: 07887 756650
Fax: 0191 2674471
DII: Acharya.Attri910@mod.uk
DII: Sp-Comd-HQ-CAT-Chap-Hindu@mod.uk

12 Frenton Close
Chapel House
Newcastle upon Tyne
NE5 1EH, UK
Tel: 0191 241 2908
Mob: 07951 759 083
Email: krishankant@hotmail.com

Acharya Dr. Lekh Ram Sharma
Village: Dhala
PO: Dyothi
District: Solan, HP
India

24th August 2013

परम सम्माननीय शर्मा जी को

हमारा हार्दिक प्रणाम् !

आशा है आप सपरिवार सानन्द कुशल होंगे।
आज इंग्लैण्ड से एक अजनबी का पत्र प्राप्त करके आपको आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है।
गत मास प्रभु कृपा से भारत यात्रा का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिस के दौरान पण्डित माणिक्य शर्मा जी (जो कि अमेरिका में कार्यरत हैं) उनके द्वारा प्रेषित पुस्तकें हमारे पूज्य अग्रजवरेण्य भ्राता श्री हरिकृष्णजी अत्री जी के माध्यम से(जो गढ़खल में रहते हैं) से प्राप्त हुई थीं।
भारत में तो पुस्तकों को पढ़ने का दाव नहीं लगा था परन्तु यहां आकर उन्हें पढ़ा और अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति हुई।
एक दिन आप द्वारा लिखित पुस्तक जय बघाटेश्वरी माँ शूलिनी का अध्ययन करते करते एक पृष्ठ पर नज़र पड़ी तो अपना नाम देख कर हैरान रह गया।
आपने इस हिरण्यगर्भा पुस्तक में विविध प्रकरणों एवं अमूल्य जानकारियों के साथ साथ मुझे भी स्थान दिया यह मेरा सौभाग्य है तो सोचा कि कम से कम धन्यवाद रूपी प्रणाम् पत्र तो प्रेषित कर ही दूं। आपका परिश्रम अत्यन्त सराहनीय है इस में किंचित् भी सन्देह नहीं है।
इस ग्रन्थ के माध्यम से हमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हुई अतः इस भागीरथ प्रयास के लिए आप को हार्दिक धन्यवाद। हम प्रभु से हार्दिक प्रार्थी हैं कि आप को इसी प्रकार से समाज सेवा एवं हमारी संस्कृति की सेवा हेतु हर तरह से शक्ति प्रदान करते रहें।
आप सभी के आशिर्वाद से गत मास ब्रिटिश सरकार ने समाज सेवाओं के लिए मुझे मैम्बर ऑफ ब्रिटिश एम्पायर (MBE) के नाम से राष्ट्रीय सम्मान दिया है। यह सम्मान भारतीय पद्म विभूषण के स्तर का है। रक्षा मन्त्रालय की गतिविधियां भी सुचारु रूप से चल रही हैं।

बाकी पुनः संयोग हुआ तो अवश्य सम्पर्क करेंगे। कभी भारत यात्रा के अन्तर्गत अवश्य आपका दर्शन लाभ प्राप्त करेंगे। हमारे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य अनुगृहीत करें।
हमारा घर का पता ऊपर लिखा है जिसनें मैंने टिक कर दिया है।
हार्दिक शुभकामनाओं सहित:

भवदीय दर्शनाभिलाषि:

कृष्णकान्त अत्री

विषयसूचिका

सादर समर्पण

भगवान् केदारेश्वर से सद्गति की प्रार्थना के साथ विनम्र **श्रद्धांजलिपूर्वक** उन दिवंगत आत्माओं को जो मानवोपेक्षित पूज्या प्रकृति के कोपवश उत्तराखंड विभीषिका के शिकार हुए।

1

हमारी सोलन हमारा सिंगार

सोलन या बघाट रियासत शिमला हिल्स की रियासतों में से एक थी। शिमला के ऊपर की अठारह ठ्कुराइयां जुब्बल और क्योंथल रियासतों के अधीन थी। शिमला के नीचे की बारह ठ्कुराइयां बिलासपुर रियासत के अधीन थी। यह एक अनोखा संयोग है कि शिमला के नीचे की ठ्कुराइयों के बारह संख्या से सम्बन्ध रखने वाली कई बातें आपसमें मेल खाती हैं, जैसे बारह ठ्कुराइयां, घाट, परगने, हाथ, ब्रीया (अनाज) और भाई आदि।

ऊपरि शिमला हिल्स की रतेश नामक ठ्कुराई का क्षेत्रफल केवल तीन वर्गमील था और उसकी सालाना आमदनी केवल दो सौ रूपए थी। शिमला हिल्स की रियासतें अंग्रेजों के अधीन थी। अंग्रेज–गोरखा युद्ध में जिन रियासतों ने अंग्रेजों का साथ दिया था उनको उनकी वफादारी के बदले हिस हाइनेस की उपाधि और तोपों की सलामी के अधिकार दिए गए थे। मंडी और चंबा सिखों के साथ युद्ध में पराजित और तबाह हो गए थे।

सोलन रियासत के राजा दुर्गासिंह आदि अनेक पहाड़ी राजा लोकतंत्र की लहर के आगे समर्पण के लिए तैयार थे। लोकतंत्र की स्थापना उनके लिए एक जुनून बन गया था। इसके बावजूद भी अनेक पहाड़ी शासक अपना रुतबा बरकरार रखना चाहते थे और चाहते थे कि एक पहाड़ी राज्य या रियासती संघ बने। डा. परमार की अध्यक्षता वाला एक वर्ग प्रदेश का नाम हिमप्रान्त रखने के पक्ष में था, जबकि राजा दुर्गासिंह की अध्यक्षता वाला हिमाचल प्रदेश नाम रखने के पक्ष में था। कुल मिलाकर सभी तत्कालीन

नेता पहाड़ी रियासतों के एकीकरण के पक्ष में थे। उत्तर प्रदेश के नेता यहां के कुछ भाग को अपने साथ मिलाने के पक्ष में थे। पंजाब पहाड़ी रियासतों को अपने साथ मिलाकर महापंजाब बनाना चाहता था।

इस बारे में राजा दुर्गासिंह व मंडी के राजा जोगेन्द्र सिंह महात्मा गांधी से भी मिले। 26 जनवरी 1948 को दोनों ने पहाड़ी रियासतों के शासकों की एक बैठक गंज बाजार सोलन में बुलाई। बहुमत से हिमाचल प्रदेश नामकरण का प्रस्ताव पारित हुआ तथा इसकी घोषणा भी की गई। 27 जनवरी को दैनिक ट्रिब्यून में यह खबर छपी थी। सोलन का यह प्रस्ताव सरदार पटेल के माध्यम से केन्द्रीय सचिव वी.पी. मेनन को स्वीकार हुआ। बघाटादि 26 रियासतों को मिलाकर महासू जिला बना। मंडी और सुकेत का सांझा जिला मंडी बना। सिरमौर और चम्बा को मिलाकर कुल चार जिले और 23 तहसीलें बनी। कुल मिलाकर 30 रियासतों का एकीकरण हुआ। केवल 2-4 रियासतें ही थी जिन्होंने अपना विलय काफी आना-कानी और नोंक-झोंक के बाद स्वीकार किया था।

सोलन परम्परा से माँ शूलिनी दुर्गा का दरबार है। सोलन जिला का सर्वांगीण विकास माँ दुर्गा के नाम समर्पित होता है। यहां के दैनिक जीवन की गति विधियां उन्हीं को समर्पित होती हैं। जीवन के हर क्षेत्र के विकास में पारम्परिक संयम और मर्यादाओं का ध्यान रखा जाता है, यही कारण है कि यह क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं से अभी तक सुरक्षित है तथा आगे भी रहेगा। सभी प्राचीन राजाओं का सम्मिलित प्रतिनिधित्व राजा हिमाचल करते हैं जो साक्षात् नीलकण्ठ के ससुर हैं। हिमाचल प्रदेश वासियों की समस्त गतिविधियां भारत राष्ट्र को समर्पित होती हैं। भारतमाता की लाज ही प्रदेश की लाज है। हिमाचल प्रदेश और सोलन दोनों महान् भारतीय परम्पराओं के सजग प्रहरी हैं। हमारा जीवन

जन्मदात्री माँ, जन्मभूमि, गौ माता और गंगा माँ के चरणों में शत-शत बलिहारी है। धन्य हैं हमारे प्रदेश के पूर्वज विद्वान् श्री दुर्गासिंह और डा. परमारादि जिनके जन्मभूमि प्रेम ने इसे हिमाचल प्रदेश बनाकर इसका गौरव बढ़ाया है।

एक दिन एक मित्र ने मुझ से पूछा कि दयारशघाट में यज्ञादि सामूहिक कार्य कैसे सम्पन्न हो जाते हैं। मैंने उन्हें बताया कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, बस हम सभा की बैठक में एकत्र होते हैं और हममें से कोई एक समाजोपयोगी काम का प्रस्ताव रख देता है। फिर हम में से कोई एक यथाशक्ति अपना योगदान तन-मन-धनादि से प्रस्तुत करने की पहल कर देता है। इस तरह महोत्सव की नींव पड़ जाती है, धीरे धीरे सभी व्यक्ति अपना अपना यथायोग्य योगदान पेश कर देते हैं और काम की योजना बननी शुरू हो जाती है। यज्ञ या सर्वोपकारार्थ काम करने से हमारा कर्ताभाव धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। यही हमें दिव्य आनन्द प्रदान करता है।

फिलहाल ही भागवत् कथायज्ञोपरान्त एक और मित्र ने बताया कि यज्ञ में उन्होंने पाया कि कोई भी सेवादार किसी वरिष्ठ व्यक्ति से सलाह नहीं ले रहा था, सब अपनी मनमर्जी से काम कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि हम तो इसे अपने यज्ञ की सफलता मानते हैं क्योंकि सभी सेवादारों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि हममें से जो भी मद्द बन पाएगी केवल उसे करने में ही अपनी पूरी शक्ति लगाएंगे। हुआ भी वैसा ही, किसी ने धनराशि की रसीद काटी, कोई भोग या फलाहार बना रहा था, कोई भोजन बना रहा था, कोई कैशियर बन गया, कोई बाजारू काम संभाल रहा था, कोई सफाई में जुटा था, कोई स्वागत में लगा था, कोई पुरोहितों की सेवा कर रहा था, कोई अतिथि सेवा में लगा था, कोई कथा सुन रहा था, कोई बर्तन मांज रहा था और कोई

इष्टदेवता की पूजा कर रहा था। सब अपनी अपनी सामर्थ्य के कामों में जुटे थे, मधुमखियों की तरह, विना दूसरे के काम में हस्ताक्षेप के। यज्ञान्त में बचा सामान बेचकर प्राप्त राशि तथा रसीदों द्वारा जमा राशि के योग को आयोजक ब्राह्मण सभा के खाते में जमा करवाया गया, ताकि भविष्य में यथा पूर्वपरम्परा आगे भी यज्ञ के आयोजन जारी रखें जा सकें। यज्ञ शेष राशि यज्ञ में ही लगनी चाहिए, परोपकार में लगनी चाहिए। समस्त श्रद्धालुओं का सहकारी यज्ञ होता है। यज्ञ इष्टदेवता को समर्पित होता है और होना भी चाहिए।

हम सब नयी पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहते हैं, यह गौरव की बात है। हम हमारा परिवार, प्रदेश और देश नई पुस्तकों से ही आगे बढ़ता है। नयी पुस्तक हमें नए युग की आवश्यकताओं से जोड़ती है, प्रगति से जोड़ती है। खड़ा पानी गन्दा होकर धीरे-ध ीरे सूख जाता है। गतिशील प्राणी सूखी जोहड़ मानिद नहीं बन सकता। वक्त के साथ जो नहीं चलते पीछे वे रह जाते हैं। वक्त सबसे बलवान् है। वक्त को सलाम। अपनी मनपसन्द नयी पुस्तक देखकर हमें खुशी होनी चाहिए वैसे ही जैसे नया पक्वान, नया वस्त्र और नया मकान देखकर होती है। इन सबका हम खुशी से मूल्य चुकाते हैं। नयी पुस्तक के लिए भी हमारे अन्दर खरीदने की ललक हो तो कितना अच्छा हो। कोई भी नया ज्ञान कभी मुफ्त में नहीं आ सकता। अरब में एक कहावत है कि नया ज्ञान सीखने के लिए चीन भी चले जाओ, अगर एक पुस्तक चीन के ज्ञान को अरब में ही लेकर आ जाए तो हमें तहे दिल से उसका स्वागत करना चाहिए। हम में से कितने भाग्यशाली हैं वे लोग जो हमेशा नई पुस्तक की टोह में रहते हैं। नए उपयोगी ज्ञान की खरीद हमेशा अपने मूल्य से कई गुना देकर जाती है, इसे हम अक्सर महसूस नहीं कर पाते। दूसरे यह भी कि नए ज्ञान को खरीदना

आत्मसम्मान की बात है। आत्मसम्मानी आदमी मुफ्त का कभी खाता पीता, पहनता और जानता नहीं। आत्मसम्मान ही जीवन है। आत्मसम्मान को खोना अपने जीवन को खोना है।

यह पुस्तक ही है जो हमें परदेश में रहते हुए अपने घर, परिवार ओर जन्मभूमि का ताजा ज्ञान देती है। जन्म भूमि में रहने वालों को उनके व्यवसाय, रहन-सहन और वैज्ञानिक परम्परा से जोड़ते हुए उन्हें सुख-शान्ति का मार्ग दर्शाती है। हर गरीब-अमीर, खरे-खोटों तथा शत्रु-मित्र को आपस में जोड़ती है। बिछुड़ों को मिलाती है। दुनिया में जितने आदमी हैं, उतनी ही उनकी पसन्दें हैं और उतने ही प्रकार की पुस्तकें भी हैं-बस आंखें चाहिए।

पुस्तक छपने की एक लम्बी कहानी है। लेखक अपने मनपसन्द विषय का विस्तृत और गहन अध्ययन करता है। विशेष विषयके विद्वानों से सम्पर्क बढ़ाता है। अपना पारम्परिक काम करता है। अनुभव कमाता है। इन सभी बातों की तह तक जाता है। समाज की बदलती भाषा और जरूरत को पकड़ता है। पुस्तक प्रेमियों को अपना भगवान् मानकर चलता है। उनके दिल को छूना ही लेखक की उपासना है। वह पुस्तक प्रेमी की हर खुशी के लिए दिलोजान से समर्पित होता है। उसकी प्रगति ही लेखक की प्रगति है। पाठक का आनन्द ही लेखक का आनन्द है। पाठक की मुक्ति ही लेखक की मुक्ति है। धन्य है, पाठक-लेखक का सनातन और दिव्य सम्बन्ध। इस सम्बन्ध पर हम सब बलि-बलि जाते हैं।

वास्तव में पुस्तक का प्रकाशन एक ज्ञान यज्ञ है। लेखक का तन-मन-धन सब टाईप, संशोधन, कागज और छपाई के मूल्य में चला जाता है। अगर कुछ बाकी बचता है तो वह है मात्र पाठक का एक दिव्य प्रेम, जो उसके जीवन की ज्योति है। मूल्य तो केवल एक व्यावहारिक प्रतीक है। इसलिए भी कि धर्मार्थ या निःशुल्क बान्टी गयी पुस्तकें अक्सर कचरे के ढेरों पर पड़ी मिलती हैं। भले

ही उसमें सौन्दर्य और ज्ञान कितना ही क्यों न भरा पड़ा हो। मुफ्त की चीज़ का महत्त्व अक्सर न के बराबर समझा जाता है। कुछ लोग भले ही समझते हों, पर सब नहीं। मुफ्त का तो भगवान् का प्रसाद भी महत्त्वहीन है। प्रसाद पाने का हक भी केवल उसे ही होता है जो यज्ञ करने में यथाशक्ति खर्च करता है, भले ही प्रसाद पाने के बाद। तभी वह अमृत रूप बनता है। मुफ्त का प्रसाद खाने का हक केवल उसे हो सकता है जो दीन, हीन, असमर्थ और गया-गुजरा हो। समर्थ के लिए कुछ कर्त्तव्य भी होता है। आत्मसम्मान सदा सर्वत्र आदरणीय होता है, मानवमात्र के लिए। आजकल तो साहित्यिक मंचों पर भी अपना-पराया चलने लगा है। ऐसी स्थिति में केवल पुस्तक ही एक ऐसा मंच रह गया है जो सबको विचारों के आदान-प्रदान का निष्पक्ष अवसर देता है।

एक दिन मैंने एक उच्च शिक्षित एक बेटी को अपनी प्रकाशित पुस्तक उपहार स्वरूप देनी चाही। मैंने उससे पूछा कि क्या वह पाठ्येतर पुस्तक पढ़ने में रूचि रखती है। उसने कहा कि मैं जॉब भी कर रही हूँ और साथ में एम.कॉम भी, अतः समय नहीं लगता। मैंने उसे कहा कि उसको अपनी संस्कृति और जीवन निर्माण पर भी कुछ पढ़ना चाहिए। वह तपाक से बोली कि संस्कृति उसे अपने खानदान से ही मिली है, अतः अतिरिक्त जानने की आवश्यकता नहीं है। मैंने पूछा कि जब खानदान और उच्च शिक्षा ही जीवन के लिए पर्याप्त हैं तो बहुत से उच्चशिक्षित व्यक्ति भी डी कल्चर क्यों हो जाते हैं और कई अनपढ़ भी सुसंस्कृत पाए जाते हैं। उसका उसके पास कोई जवाब नहीं था। मेरे उससे यह पूछने पर कि क्या मेरा प्रश्न गलत है तो वह बोली कि प्रश्न आपका सही है। मैंने उससे कहा कि अगर प्रश्न सही है तो इसका उत्तर उसे जरूर खोजना चाहिए। फिर मैंने उसे अपनी पुस्तकें उपहार में नहीं दी, यह जानते हुए कि पुस्तक के लिए तो

पाठक में आग्रह होना चाहिए जो उसमें था नहीं। मुफ्त की पुस्तकें प्रायः पढ़ी नहीं जाती, मैं स्वयं सभी नहीं पढ़ पाता। अपवाद स्वरूप कोई कोई व्यक्ति पढ़तें हैं। अपने रूचिकर विषय की पुस्तकें हमें चाहे जैसे भी मिलें हम उन्हें जरूर खोजते और खरीदते हैं। जहां तक मेरा निजी अनुभव है व्यावसायिक, सांस्कृतिक और जीवन निर्माण की पुस्तकों के प्रति हर प्रकार के पाठकों का आग्रह रहता है। आमतौर पर पाठकों के दिलों पर केवल वही पुस्तक असर करती है जो उन्हें रोटी-कपड़ा और मकान के साथ-साथ चेतना की निर्मलता प्रदान करने में भी मदद करे।

मैंने स्वयं अपने जीवन में हजारों रूचिकर पुस्तकें पढ़ी हैं, लेकिन अधिकतम का मूल्य चुकाकर ही। जिस ज्ञान के लिए मूल्य नहीं चुकाया जाता, वह ज्ञान भी अदुग्धा गाए के समान व्यर्थ होता है। वास्तव में पुस्तक के ज्ञान का तो कोई मूल्य चुकाया ही नहीं जा सकता। हम जो मूल्य चुकाते हैं, वह तो केवल उसका कागज का मूल्य होता है। उसका आत्मिक मूल्य चुकाना असम्भव है। वास्तव में माँ और पुस्तक का ऋण कोई नहीं चुका सकता। माँ सरस्वती पुस्तकधारिणी हैं, ज्ञानस्वरूपा हैं, सबसे बड़ी गुरु हैं। नास्ति मातृसमो गुरुः। माँ का कर्ज कौन उतार सकता है। एक बार छत्रपति शिवाजी जन्मदात्री माँ का कर्जा उतारने चले थे। माँ ने एक रात को उनका बिस्तर गीला किया तो सबेरे उठने पर बड़े क्रोधित हुए। माँ को अपना कष्ट बताया तो माँ ने कहा, बेटा् एक रात के कष्ट से इतना आग बबूला हो गया? मैंने तुम्हारे बचपन में न जाने कितनी रातें जाग कर काटी है। शिवाजी को होश आया तो माँ के चरण पकड़ लिए और बोले- माँ क्षमा करना, माँ का कर्जा कोई नहीं उतार सकता। स्पष्ट है कि जब हम जन्मदात्री का कर्जा नहीं उतार सकते तो मार्गदर्शिका ज्ञानदात्री का कर्जा भला कौन उतार सकता है। मैं उन महान् लेखकों का हृदय से ऋणी हूँ, जिनकी पुस्तकों का

मैंने भौतिक मूल्य तो चुकाया है परन्तु आत्मिक नहीं। केवल भैतिक मूल्य चुकाने से भौतिक उन्नति भी सम्भव नहीं है। अतः पुस्तक की कागज और मुद्रण पर आई लागत तो हमें हृदय से चुकानी ही चाहिए। आत्मिक मूल्य तो केवल श्रद्धा से चुकाना सम्भव है। पुस्तकें हमारी मार्गदर्शक गुरू होती हैं। ये हमारी सभ्यता और संस्कृति का विकास करती हैं। पुस्तकें अनुभवों के आदान-प्रदान के द्वारा सामाजिक समरसता पैदा करने में सहायक होती हैं। प्रकाशन हमारे मार्ग को प्रकाशित करते हैं। हमारी बुराई रूप अंधकार को मिटाते हैं। हमारे अपने आपसे हमारा परिचय करवाते हैं। हमारा अपना परिचय ही हमें समस्त सुख प्रदान करता है। अतः कम से कम अपनी निवास भूमि से जुड़ी पुस्तक हमें अवश्य पढ़नी चाहिए। वास्तव में हमारा निवासस्थान ही हमारी गतिविधियों की धुरी या केन्द्र होता है।

'शूलेन पाहि नो देवि ......' मन्त्र के अनुसार माँ शूलिनी देवी अपने त्रिशूल या त्रैगुण्य से बघाट की रक्षा करती है। बघाट हमारी सोच के एक व्यापक फलक का नाम है। सबकी भलाई करने में विश्वास रखने वाली दिव्य भूमि बघाट की चारों दिशाएं उसकी भुजाएं हैं। 'आपणा मूल पछाण' के अनुसार वह अपने मूल को पहचानने के प्रयत्न में लगा है। भला वह अपने ऋषियों के सन्देश 'आत्मानं विद्धि' अथवा 'अपने आपको पहचानो' को कैसे भूल सकता है।

हमारी जन्म देने वाली माँ और जन्मभूमि हमारे लिए स्वर्ग से भी बढ़कर है। हमारे द्वारा अपनी जन्मभूमि को दिया गया सुख हमारा अपना सुख है। हमें मिलकर इसका विकास करना चाहिए। पश्चिमी दुनिया से लिया गया व्यक्ति गत स्वतन्त्रता का वाद हमारे लिए सुखकर नहीं है। हमारी संस्कृति की मुख्य पहचान है, मिल जुलकर विकास करना। आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने इस

नियम की व्याख्या 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के रूप में करते हुए कहा था कि ब्रह्म (व्यक्तियों का समूह) सत्य है जगत् (व्यक्ति) नहीं। अर्थात् संस्था व्यक्ति से ऊपर होती है। इसी भावना को अपनाकर लोग जीवन जीते थे। सब सुखी रहते थे। धीर-धीरे जगत् का सीधा सा अर्थ केवल शरीरादि लिया जाने लगा और संसार को एक झूठ और धोखा मान लिया गया। परिणाम यह हुआ कि शंकर जी के अनुयायी गुफाओं (सन्यास) की ओर आकर्षित होकर जीवन से प्रायः पलायन करने लगे। विदेशियों को भारत पर आक्रमण के मौके मिलने लगे। हमारी महान् वैदिक सभ्यता धूमिल हो गयी, कायरता घर करने लगी। तभी अनेक विद्वान मध्ययुग या दसवीं शताब्दी को अंधकार का युग कहते हैं। इसके बाद आजादी तक भारत का जो हाल हुआ उससे हम सभी परिचित हैं। आज भारत फिर से अपनी मौलिक वैदिक पहचान की ओर उन्मुख है, यह हर्ष का विषय है।

बघाट को बारह घाट, बहुघाट और बेघाटों का घाट आदि अनेक अर्थों में लिया जाता है। बघाट सचमुच अशरणों की शरण है। जो यहां बस गया सो इस मिट्टी का होकर रह गया। इस मिट्टी के गुण उस में समा गए। व्यक्ति अपनी उदारता से विराट् हो गया। अपने पेट का तो सब सोचते हैं, वह सब के पेटों की चिन्ता करने लगा। उसके लिए कोई बेगाना न रह गया। एक घाट पर सब पानी पीने लगे। लोग एक दूसरे के लिए जीने लगे। चतुर्दिक शान्ति पसर गई। हमारे घाटों पर जहां कभी प्याऊ लगते थे आज उसके प्रतीक नलके लगे हैं। घाटों के घाट बघाट की क्या कहने, लगता है यहां कभी तीर्थों के स्नानघाट रहे हों। आज तो प्राचीन श्मशानघाट भी शिवधाम में बदलने लगे हैं। दुनियां में जहां-जहां घाट हैं, वहां-वहां बघाट ही नजर आता है। जहां भी देखों एक ही परिवार नजर आता है। वसुधैव कुटुबकम्।

बघाट के राजा और प्रजा प्राचीनकाल से एक ही उद्देश्य भगवत्प्राप्ति (सर्वजीवोपकार) के मार्ग पर चलते आए हैं। यहां तक कि आज के लोकतान्त्रिक जन प्रतिनिधि भी उन्हीं के अनुयायी बनते चले जा रहे है। मानवमात्र का एकमात्र सत्पथ है, सर्वजीवोपकार। हमारी संस्कारधारा निर्मल गंगा के समान है। हम उसे निरन्तर पावन रखते हैं। हमारा महान् धर्म अपने इष्टदेव या आदिपुरूष या आदि माता की उपासना है। ब्वारा या परस्पर सहयोग करना हमारा नित्य का जीवन व्यवहार है। जीवन के तीव्र प्रवाह में हमारा कोई भाई पीछे न छूटने पाए। सब साथ साथ मिलकर एक पंक्ति में चलें। यही बघाटी जीवन शैली है।

बघाट की बोली हमारी सांस हैं, अपनी देश सेवा की खातिर कोई अंग्रेजी पढ़े तो अच्छा अन्यथा विना रूचि के इस को किसी बच्चे पर लादा न जाए। अंग्रेजी जैसी सौतेली माता बच्चों को खराब करती है। अंग्रेजी संस्कारों वाला अंग्रेजी और हिन्दी संस्कारों वाला हिन्दी पढ़े। अंग्रेजी से कुछ बढ़ेगा नहीं, हिन्दी से कुछ घटेगा नहीं। अंग्रेजी सीखने वाले बच्चों को हर अंग्रेजी शब्द का हिन्दी अनुवाद भी साथ में बातया जाए। अन्यथा आजीवन उन्चास कितने होते हैं? या फुलफला क्या होता है? आदि प्रश्नों का सामना करना पड़ेगा। जय बघाट। वंदे मातरम्।

''भारतीय संगीत और सोलन''

भारतीय संगीत के अनुसार स्वर या नाद से ही संसार की रचना मानी जाती है, संगीत जीवमात्र को प्रभावित करता है। यहां की संगीत परम्परा विश्व की प्राचीनतम है तथा अब तक चली आ रही है। यह गायन, वादन और नृत्य का संगम है। राग और ताल पर आधारित यह लय ओर मधुरता से सराबोर है। वाद्ययन्त्रों के

आविष्कार का श्रेय भी भारत को ही प्राप्त है।

लय और ताल में बंधी सुव्यवस्थित ध्वनि को संगीत कहते हैं। संगीत का आदि स्त्रोत प्राकृतिक ध्वनियां हैं। मनुष्य ने उनकी विशिष्ट लय को समझने की कोशिश की थी। भाव या रस पैदा करने वाली ध्वनियों को ठोक बजाकर परखा था। विभिन्न सामाजिक कार्यों और उत्सवों में उनका प्रयोग किया जाता है। भारतीय संगीत विश्वसंगीत में सर्वोत्तम गिना जाता है। इसमें मौलिकता है। रागों पर आधारित पुराने गाने आज भी सदाबहार लगते हैं। यहां का संगीत सात्विक और शाश्वत है जबकि अन्य संगीत क्षणिक है। यह आज भी गुरू–शिष्य परम्परा से आगे बढ़ रहा है। यह मन पर गहरा असर डालता है। लतामंगेश्कर द्वारा गाए गए 'ऐ मेरे वतन के लोगों...... गीत को जब नेहरू जी ने सुना तो उनके भी आंसु निकल आए। तानसेन के दीपक राग से दीपक जल उठे थे तथा मेघ मल्हार गाने से वर्षा होने लगी थी। दिल से निकला संगीत प्रकृति को पिघला देता है। अच्छी आवाज, परिश्रम दृढ़ निश्चय, आलोचना के प्रति सद्भावना, आत्मविश्वास और महत्त्वाकांक्षा संगीत प्रेमी को उन्नति के शिखर तक पहुंचा देते हैं।

भारतीय संगीत में कालीदास, तानसेन, अमीर खुसरो, पण्डित रविशंकर, भीमसेन जोशी, पण्डित जसराज, प्रभा अत्रे और सुल्तान खान आदि ने इस महान् कला को आगे बढ़ाया है। संगीत के आदि प्रेरक भगवान् शिव और भगवती सरस्वती माने जाते हैं। विना किसी दैवी प्रेरणा के केवल अपने बल पर इसमें महारत पाना दुष्कर होता है। सोलन क्षेत्र में सलोगड़ा के पास मनसार गांव के निवासी पण्डित श्री नारायण दत्त शर्मा ने इस कला के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इसी तरह चायल के पास तैतू (झाजा) के निवासी डा. आर.एस. शाण्डिल (वर्तमान में हि.प्र. वि. वि. में प्रोफेसर) का इस विद्या में महत्त्वपूर्ण योगदान चल ही रहा

है। इस विद्या में सोलन के आस-पास और भी अनेक गौरवपूर्ण व्यक्तित्व उल्लेखनीय है।

इस कलाक्षेत्र में कदम रखने के लिए रूचिपूर्वक कम से बारहवीं पास होना जरूरी है। इसके लिए सर्टिफिकेट, डिप्लोमा, बैचलर और स्नातकोत्तर आदि कोर्स यथारूचि हि.प्र. विश्व विद्यालय, खैरागढ़ विश्व विद्यालय, भारतखण्डे विश्व विद्यालय और बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय आदि से किए जा सकते हैं। गन्धर्व महाविद्यालय पूना में भी कुछ कोर्स उपलब्ध हैं। इस विद्या में नौकरी के अलावा स्वतन्त्र कार्य भी उन्नति दिलाता है। आशा है, सोलन इस विद्या में नाम कमाएगा।

''बघाटी सामाजिक संस्था सोलन''

बघाटी सामाजिक संस्था एक सामाजिक संस्था असो। इ आपणी जन्म भूमि री सेवा री खातर समर्पित असो। हामे सब मिल रो बैठ्का मांय आपणे क्षेत्रा री समस्या रे बारे मांय विचार-विमर्श करू अरो सामूहिक निर्णय लय रो तेते कार्यान्वित करू। म्हारा उद्देश्य असो जे म्हारे कामा साय सभी रा भला होणा चैंई। म्हारे पूर्वजा रही बणावी दी परम्परा लुप्त लग रोई ओणि। हामे बघाटि बोलि बोलणि मांय शर्म मानूं। म्हारी बोली रा एक एक शब्द सोना असो। विद्वान् बोलो जे आपणे पूर्वजा रा एक शब्द (जीवनशैली) नष्ट होणि साय म्हारा बि नाश शुरू होय जाओ।

म्हारे पहाड़ि प्रदेशा रा निर्माण म्हारी परम्परा रे कारण ही होआ जो सभी दे खास किश्मा रि असो। पहाड़ म्हारि पछ्याण असो। शूलिनी दुर्गा माता म्हारि कुलजा अरो स्थाना रि इष्टदेवि असो। इ गरे-गरे पुजि जाओ। हामे आपणे गरे पैदा किए दे नौज इयां खे चढ़ाऊ। आशीर्वाद प्राप्त करू। पैले ओरी खे बान्टरो तबे आपि खाऊ।

मेला करू अरो जगन्माता रा श्रृंगार बि करू। इ सभी बघाटी रे दिला मांय बसो। सभी जीवा रा आदर करनि साय इयां रि पूजा आफिए ओइ जाओ।

म्हारि सांस्कृतिक परम्परा गंगोत्री रे गोमुखा री तरह असो। मां गंगा आपणे पवित्र जला साय सभी रा उपकार करो। गौ माता बि सभी रा उपकार करो। हामा खे सबी रा उपकार करनिरि प्रेरणा बि देओ। मां गंगा री तरह म्हारि परम्परा बि निर्मल असो, पेरि एते रे प्रवाहा मांय म्हारे आपणे मल (खराबी) मिल गोए। अरो इ दूषित होइ गोइ। हामे आपणे परोपकारा रि मार्यादा खोय दिति। हामे ब्वारा या सहयोग सब भुलणि लग गोए। आपणा परिवार और समाज भुल रो हामे केवल आपि आपि जोगे रय गोए। राज दरबारा मांय अरो श्मशाना पांए आपणे भाई रा साथ देणि रि परम्परा भुल रो हामे केवल आपणी खातर जिवणि लग रोए। आपणा पेट तो काव बि मजे मांए भर लौ। हामा खे आपि साथी साथी सबी री खातर बि जिवणा चैईं। पांजा मांय परमेश्वर रौ।

हामे आपणे बच्चे पांए अंग्रेजि लग रोए लादणि। सब बच्चे एक जीशे नीं औंदे। हर बच्चे रि योग्यता अलग अलग ओ। कस पांय अंग्रेजि जबरिए लाद रो हामे मानवता रा अनादर करू। माँ अरो जन्म भूमि माता सुर्गा दे बि जादे सुख देओ। आपणी मा रा दूध अमृत ओ। पब्लिक स्कूला रे बच्चे रे भारि बस्ते रा प्रबन्धन करनि आली मा पांए तरस आओ।

पराई मा कबे आपणि नी ओ सकदि। सौतेलि मा म्हारा भला नी कर सकदि। एकी लोक कथा रे अनुसार एक सौतेलि मा विना मा रे नौजवान राजकुमार बेटे साय ब्या करनि रा आग्रह करनि लगि। धर्म प्रेमि बेटा बाजा पोरा। चुलबुली विलासी माए राजे काए बेटे री कपट दृष्टि रि उल्टि शिकायत कर रो तेस बेटे रा क्रोध ा साय देशनिकाला ही करवाय दीता। तबे ही तो बोलो जे सौकण

तो काठा रि बि बुरि ओ। सौतेलि मा आचरणहीन ओए सको। अंग्रेजि म्हारी सौतेलि मा असो। इयां रा दूध जन्म भूमिमाता साय प्रेम पैदा नी कर सकदा। हामे अंग्रेजि भले ही पढ़ू पेरि आपणि तहजीब ना खोऊ।

आपणे बच्चे खे हर अंग्रेजि शब्दा रा बघाटि अरो संस्कृत अनुवाद जरूर शकेवणा चेईं। आजादी दे पहले एक अंग्रेजी भाषा मांए निष्णात युवति गांधी जी रा आशीर्वाद लणि तीना काए आइ जे आऊं रूस देशा मांए पढ़ावणा चाऊ, माखे आशीर्वाद दे ओ। गांधी जिए बोला जे आऊँ तो आपणे देशा रि सेवा करनि आले खे ही आशीर्वाद दे सकू, पराए देशा री सेवा री खातर नी। अंग्रेजि पढ़ रो विदेशी कम्पनी रि गुलामि करना आपणे देशा री भलाई मांए नीं ओंदा। म्हारी संस्था रे अंग्रेजी रे विशेषज्ञ अध्यक्ष श्री संतराम शर्मा जीए बि आपणा सारा जीवन बघाटा री सेवा मांए समर्पित कर राखा। ईना री तरह ही म्हारे कई साथि कानून, कृषि अरो साहित्य-पत्रकारिता आदि विषय रे विशेषज्ञ बघाटा रि सेवा लग रोए करनि। बघाटा रि सेवा करना म्हारि परम्परा असो। एसरि सेवा हामा खे तना, मना अरो धना साय करनि चेईं।

आपणि बोलि हामा खे मौलिक अरो सुखि बणाओ। नकलचि सदा दुखि रौ। म्हारे इलाके मांए एकिए गेंदे रे फूल लाय रो बांदरा खे भगावणि रा तरीका खोजा तो रेके चिया री पत्ती या सरेवला री ईंटा तैयार कर दीती। हामे आपणे कुला रे देवी-देवता अरो पुरोहिता रा आदर कर रो अरो तीना रा इतिहास जाण रो सबी किश्मा रा सुख पाय सकू। आपणि पवित्र परम्परा छाड रो हामा खे हार कस कलंकित बाबेरी शरणा मांए जाणा बि आपणी मातृभूमि रा निरादर करना असो। तीना रे शोषणा दे बचणा जरूरी होय गोआ। म्हारी हर समस्या रा इलाज या रास्ता म्हारा सदाचारि वरिष्ठ पूर्वजा काए मिल सको। आनन्दमयी मां आपणे भगता खे

तेसरे कुलेष्ट देवता रा ही मन्त्र देओ थि। वशिष्ठे न्योठण राजे दिलीपा खे गोसेवा रा सुलभ उपचार बतावा था।

बघाट केवल एक जमीना रा टुकड़ा नी आथि बल्कि एक उदार दृष्टि रा विस्तार असो। मां आपणी बेटी खे बताओ जे मूंड खट रो भोजन बणावणा चेईं ताकि रोटी-ओलणा मांय गंदे बाल न पड़ जाओ। बघाट ईशा स्नान घाट असो जेते मांए हर कोई आपणे कुसंस्कार धोए सको अरो सर्वे भवन्तु सुखिनः मन्त्रा रि दीक्षा लय सको। हर सच्चा, ईमानदार, कर्मठ अरो परम्परा प्रेमि आदमि बघाटि ओ। एती व्या मांए भगवान् रामचन्द्रा रे ब्या रे गीत गाए जाओ ताकि लाड़ा-लाड़ी मांए तीना रे संस्कार प्रवेश कर जाओ। मनोरंजना खे स्वांग रच रो पहाड़ से दो पहाड़ी आए जीशे फ्णुएं रे गीत गाए जाओ। गंधर्व विवाह ब्रह्मविवाह जेतणा शुभ नी ओंदा।

दो साल पैले बोहचा मांए म्हारी सांस्कृतिक यादगार राजभवना खे द्वारदे वक्ता कुणिए चूं तक नीकि। प्रकृति माता रे प्रबन्धनानुसार हामे एती जन्म लया राखा। जो जेती जोगा ओ से तेथी जन्म लौ। हामे माँ बघाटेश्वरी खे निरन्तर प्रणाम करू। म्हारे लोकप्रिय राजे दुर्गा सिंह बोला था जे संध्या रो कर्मकाण्ड म्हारी मुक्ति (आजादी) रा पैहला पड़ाव असो। शिल्ली रे बणा दे तिणिए आपणे हाथे केलो रे पौधे लाए थे से आज तेसरा स्थापित संस्कृत महाविद्यालय दुनिया रि सेवा मांए लगा दा असो। परम्परा प्रेमि लोग चाओ जे एते खे विशाल वटवृक्षा (विश्वविद्यालय) रा रूप दिया जाओ ताकि एसरी सेवा रा विस्तार दूरा तेईं फैल सको।

आपणि बोलि अरो संस्कार छाडणि आला सांख्य रे पुरुषा री तरह पंगु ओये जाओ। एकी बारे केन्द्र सरकारा रे कनारे रे दे एक सर्वेक्षक दल अकाला साय ओए दे नुकसाणा रा जायजा लणि देवठी पंचायति मांए आया। दला रे प्रधाने पूछा जे त्हारी बोली मांए अकाला खे का बोली। कोई नी बताय सका। दले निर्णय लोआ जे

त्हारा भारी नुकसान ओआ ओंदा तो अकाला रा स्थानीय शब्द जरूर याद आवणा चैं था, अतः त्हारा भारी नुकसाण ही नी ओआ। से भारि नुकसाण रे बावजूद बि सरकार री मदद दे वंचित रय गोए।

''सोलन के गौरव वैदिक संस्कृति के सेवक''

पण्डित माणिक्य शर्मा शास्त्री तहसील कसौली के गांव खजरेट के निवासी हैं। ये अमेरिका में वैदिक संस्कृति व स्वदेशी संगीत में तालों का पाठ पढ़ाते हैं। पिछले छः सालों से ये फ्लोरिडा शहर में भारत की वैदिक परम्पराओं के संरक्षण की दिशा में काम कर रहे हैं। अपने इष्ट बीजेश्वर महादेव को समर्पित इनकी निःशुल्क पुस्तिका लोगों में आस्था जगाने वाली है। वैदिक तालों पर आधारित इनके भजन एवं स्तोत्र शोधार्थियों के लिए नए विषय बन सकते हैं। इनकी रचनाओं की सीडी सोलन के रियल मिक्स स्टुडियों में प्रायः पूरी हो चुकी है। सोलन के प्रसिद्ध संगीतकार श्री जियालाल ठाकुर के मार्गदर्शन में यह सब कार्य हो रहा है। माणिक्य शर्मा ने 'श्री राम चन्द्र कृपालु भजमन' भजन को कृत्रिम रूपक ताल से अलग चौदह मात्रा वाली वैदिक ताल में गाकर नया काम किया है। इसमें ढोल नगाड़ों का भी प्रयोग किया गया है। इनकी सीड में 10, 12, 14 और 16 मात्राओं वाली वैदिक तालों का प्रयोग किया गया है।

माणिक्य शर्मा ने अपनी शिक्षा क्रमशः चामिया, सोलन और शिमला से प्राप्त की है। इन्होंने संगीत की शिक्षा गढ़खल से तथा कर्मकाण्ड और भागवत की शिक्षा अपने ताया जी से ग्रहण की है। ये फ्लोरिडा के सनातन धर्म मन्दिर के मुख्य पुजारी के रूप में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहे हैं। इसके इलावा ये न्यूयार्क, अटलांटा और फ्लोरिडा के भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों में भी अपनी सेवाएं प्रदान करते रहते हैं।

''बीजेश्वर महिमा''

पण्डित माणिक्य शर्मा 'शास्त्री' के अनुसार बीज (आकाशीय बिजली की तरह) अस्त्र चलाने से बीजेश्वर देवता बीजेश्वर कहलाते हैं। बीज के गोले की शाक्ति बड़ी संहारक मानी गई है। देवता के हाथ में माला, गले में सर्प और सिर पर सफेद पगड़ी, कानों में सफेद कुण्डल, माथे पर त्रिपुण्ड धारण किए सफेद घोड़े पर सवार हैं। गले में फूलों के हार हाथों में पाश और दण्ड धारण किए हैं। एक बार काशी कश्मीर में सभी देवताओं ने चक्रवर्ती सम्राट महाराज देव बीजेश्वर से सप्रणाम प्रार्थना की कि वे शिरगुल के उपद्रवों को शान्त करने के लिए उनके साथ चलें। शिरगुल ने पत्थरों से आक्रमण किया। बीजेश्वर ने भयानक युद्ध करने के बाद अपने मन्त्री पढ़्यार, नव करोड़ दुर्गा और चौंसठ योगिनियों के साथ मिलकर आकाशीय बिजली का एक गोला बनाकर शिरगुल के पीछे फेंका तो पृथ्वी पर कम्पन हुआ। शुभकार्यों के बाधक भूत, प्रेत और पिशाचादि निकृष्ट योनियां नष्ट हो गई और शिरगुल भी वहां से चूड़ी चांदनी की ओर भागा। जादू-टोने नष्ट हो गए। सभी देवता प्रसन्न हुए महा देव बीजट, पधारे तथा बीजेश्वर के राज में प्रजा ने सुख पाया। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के कारण उन्होंने इनकी वन्दना की और भीमाकाली के साथ देवथल में निवास किया। कामनापूर्ति, शुभकार्यारम्भ और ज्येष्ठ पुत्र विवाह के अवसर पर देवरथयात्रा, जागरण, करियाला, जीवित बकरी या कड़ाही भेंट की जाती है।

चार चौकड़ी के राजा बीजेश्वर का निवास काशी कश्मीर के ऊंचे पर्वत पर है तथा इनका जन्म मास वैशाख है। वैशाख में इनकी यात्रा नहीं होती। कांगड़ा में इनका किला है। ये राजाओं के राजा हैं। विशेषकार्यार्थ गंभरपुल में इन्होंने निवास किया। ये

सोने के सिंहसन पर विराजमान हुए। गांव-गांव में इनकी रखवाली है। जागरा, बरलाज, करयाला और नमाले किए जाते हैं। नौबत बजाई जाती है। ये खजरेट गांव के वासियों के कुलदेवता हैं। देवता अपने कल्याणों के रखवाले हैं। इनके निमित्त यज्ञ किये जाते हैं।

आजकल देवथल में बीजेश्वर देवता के साथ महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति भी विराजमान है। महिषासुर मर्दिनी साक्षात् महालक्ष्मी है। महिष नामक असुर ने देवताओं को हराकर स्वर्ग से निकाल दिया और स्वयं इन्द्रासन पर बैठ गया। संसार में भटक रहे देवताओं ने ब्रह्मा-विष्णु-महेश से अपनी फरयाद की। विष्णु-शिव के मुखों से एक महातेज पैदा हुआ। ब्रह्मादि देवताओं के शरीर से निकला तेज उसके साथ मिल कर एक दिव्य देवी के रूप में बदल गया। देवी-देवताओं ने उन्हें अपने अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया। महिष ने आक्रमण किया तो भगवती और सिंह ने सेना और सेनापतियों सहित उसे मार डाला। उस दिव्यरूपा पार्वती से अनेक देवियों की उत्पत्ति हुई और फिर उसी में समा गईं। देवी वास्तव में एक ही है लेकिन वह विविध कार्यानुसार अनेक नामों से प्रसिद्ध हुई। महिष ने देवी के साथ सायुज्य प्राप्त किया था। देवी के साथ महिष और सिंह भी पूजनीय हो गए।

दुर्गासप्तशती के अनुसार माँ पुण्यात्माओं के घरों में लक्ष्मी रूप से तथा पापियों के घरों में दरिद्रता के रूप में निवास करती है। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे हिमाचल में भीम रूप में प्रकट हो कर ऋषि-मुनियों की रक्षार्थ राक्षसों का विनाश करेंगी। सराहन की भीमाकाली बुशहर रियासत के राजवंश की कुल देवी हैं। उषा-अनिरुद्ध प्रेमप्रसंग में यहां शंकर भक्त राजा बलि के पुत्र बाणासुर और कृष्ण के बीच युद्ध के बाद श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के हाथ में यहां की राज्यसत्ता आई। इसी राजवंश ने भीमाकाली

का मन्दिर अपने महल के अन्दर ही बनवाया। वर्तमान में माता भीमा काली के दो भव्य भवन हैं। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार द्वापर युग में भीमगिरि नामक एक ब्राह्मण ने अपनी लाठी में अपनी उपास्या भीमाकाली को स्थापित किया था। लाठी के भारी होने पर उसने स्थानीय राजा से देवी की वहीं रहने की इच्छा को बताया। बुशहर वंशी राजा ने श्रद्धापूर्वक माँ भीमा काली की अपनी कुल देवी के रूप में प्रतिष्ठा करवाई।

आजकल देवी पूजार्थ शैलापानी के स्त्रोत का जल प्रयोग में आता है। ब्रह्ममुहूर्त में माता का स्नान, श्रृंगार, उपचार पूजा और वन्दना की जाती है और वैष्णव तरीके से हलवा पूरी भेंट की जाती है।

कढ़ी पत्ता :

यह कढ़ी में डाला जाता है। यह दक्षिणी भारत के व्यंजनों का अनिवार्य हिस्सा है। इसे मीठा नीम या गंधेला भी कहते हैं। इसका पाउडर भी प्रयोग में आता है। इसे पूजा में तुलसी का विकल्प माना जाता है। इसका पौधा समुद्रतल से लगभग साढ़े चार हजार फुट की ऊँचाई तक तथा लगभग सारे देश में उगता है। इसे सोलन में कडेला कहते हैं। अप्रैल-मई में इस पर सफेद फूल लगते हैं। यह गुच्छों में काले, गोल, गंधदार और मीठे फल देता है। यह बाजार में काफी बिकता है। इसका पौधा लगभग छः फुट ऊँचा होता है। दस्त या अतिसार में इसके हरे पत्तों का रस लाभदायक होता है। इसको सुरभि नीम भी कहते हैं। यह विषाक्त और कीटाणुनाशक है। यह उत्तेजक, बलदायक और वातहर होता है। इसका रस उल्टी को रोकता है। घाव या कीट दंश पर इसके पत्ते पीसकर लगाना उपयोगी होता है। यह डायबिटीज़ और कैंसर में भी उपयोगी माना जाता है। इसके पौधे सोलन के आस-पास

बहुत हैं। इसके पत्ते पक्वानों में डाले जाते हैं।

बन्दर-भगाऊ कीमती फूलों की खेती :

क्राइसैथिमय नामक फूलों की खुशबू से जंगली जानवर भाग जाते हैं। डुमैहर निवासी कैलाशचन्द हर साल इससे दो-तीन लाख रूपए कमा रहे हैं। उनके अनुसार पानी की कमी और बन्दरों वाले भू-भागों के लिए यह फूल उगाना बेहतर है। 27+1 मीटर चौड़े बेड़ में छः इंच के फासले के हिसाब से इसके 1000 पौध ो रोपित होते हैं। इन्हें जनवरी-फरवरी वाली वर्षा में रोपने से सिंचाई की जरूरत नहीं रहती। इनमें गर्मी और सूखापन झेलने की ताकत होती है। बाजार में एक फूल औस्तन दस रूपए का बिकता है। एक बेड में 8000 डन्डियां या 80,000 रूपए पैदा होते हैं। यह 15 अक्तूबर से 15 जनवरी के बीच पैदा होता है। कैलाश इसे केवल दो बीघा जमीन में उगाकर अर्थिक रूप से सम्पन्न हुए हैं। सूखी जमीन में भी पैदा होने वाला यह फूल स्वरोजगार के लिए भी एक सुन्दर विकल्प है। बाजार में इसकी पर्याप्त मांग है। (सौजन्य-दिव्य हिमाचल)

जमीन की दुश्मन फूल-लकड़ी :

सोलन के नजदीकी गांवों में फूल-लकड़ी या लैन्टाना कैमारा का प्रकोप दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। जंगलों, खेतों से होकर आंगनों तक पसर गई है। कोई कारगर वैज्ञानिक उपाय के विना लोग इसका आतन्क झेलने को मजबूर हैं। इसे 'ग्रीन फायर' कहना सार्थक ही लगता है। कहते हैं सन् 1809 में इन्डियन बोटानिकल गार्डन कलकत्ता में खुशबूदार फूलों के रूप में इसका

प्रवेश हुआ था। इसे बूटी, फुलणु और उज्डू भी कहते हैं। इस पंचरंगी फूल की कुछ प्रजातियां घातक मानी गई हैं। पक्षियों द्वारा इसके बीज इधर-उधर फैलाए जाते हैं। अभी तक बांस, आंवला और खैर के वृक्ष उगाना ही इसका विकल्प है। यह और कांग्रेस घास पशुओं के लिए घास तक नहीं उगने देते। ये दोनों किसानों के सबसे बड़े शत्रु हैं, अतः कृषि विशेषज्ञों को इसका कोई तोड़ जल्द निकालना चाहिए।

माँ तुलसी :

मूल प्रकृति की प्रधान अंश, गंडकी नदी की पैदा, शालग्राम पर चढ़ी मोक्षदायक, वपन चैत्र शुक्ल नवमी को, दो सौ गज तक विद्युत शक्ति, माला रोग निवारक, घर आकाशीय बिजली के खतरे से मुक्त, जड़ की मिट्टी पवित्र, आठ पावन नाम-वृंदा, वृन्दावनी, विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दनी, तुलसी और कृष्णजीवनी।

2

हमारी जीवनसाधना

सोलन में प्राचीन काल से नित्यसंध्या तथा धर्मानुष्ठानों के साथ नित्य गीतापाठ की परम्परा रही है। हममें से बहुत से ध र्मप्रेमियों को गीता के बारे में साधारण जानकारी की जरूरत हो सकती है। गीता का पाठ अगर उसके भाव को जानकर किया जाए तो पाठ का फल कई गुणा बढ़ कर समय पर काम भी आ सकता है। धर्म हमारे जीवन का पोषक बने, इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह अध्याय प्रस्तुत है।

जीवनसाधना प्रधान ग्रन्थ गीता की रचना लगभग 5000 वर्ष पहले की गई मानी जाती है। उस समय उत्तरी भारत के ज्यादातर भाग पर कुरुवंश का राज्य था। उनकी राजधानी हस्तिनापुर थी। राजा पाण्डु की अल्पायु में मृत्यु हो जाने के कारण धृतराष्ट्र को राजगद्दी दी गयी। बड़े होने पर पाण्डवों ने धृतराष्ट्र से राज्य मांगा। उल्टे दुर्योधनादि कौरवों ने उन्हें छल करके तेरह वर्षों के वनवास पर भेज दिया। उनके वापिस आने पर सभी प्रयासों के बावजूद भी कौरवों ने उनको राज्य का थोड़ा सा भी भाग देने से मना कर दिया। दोनों पक्षों के बीच धर्म के लिए निर्णायक युद्ध हुआ। भारत के अधिकतर राजाओं ने उसमें भाग लिया। श्री कृष्ण न केवल महान् नीतिज्ञ और योद्धा बल्कि साक्षात् भगवान् हैं, उस समय इस बात का पता बहुत कम लोगों को था। गीता माता भगवान् की दिव्य वाणी है। इसके अठारह अध यायों के 694 श्लाकों में सम्पूर्ण वैदिक धर्म का सार भरा है। यह मानव मात्र के लिए उसके कर्त्तव्य का निर्धारण करती है।

एकमात्र ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करने के लिए अथवा व्यक्तिमात्र के आत्मकल्याण के लिए इसमें मुख्यतः सर्वजन सुलभ भक्तियोग का आश्रय लिया गया है। इसके कर्मयोग और ज्ञान योग भी वास्तव में भक्तियोग के ही पूरक हैं, ऐसा मैं समझ पाया हूँ।

गीता के आधारग्रन्थ महाभारत में मुख्यकथा राजा शान्तनु के पुत्रों भीष्म, पाण्डु और धृतराष्ट्र की आती है। ये ब्रह्माजी के वंशज थे। ब्रह्माजी के पुत्र हुए थे कश्यप ऋषि। कश्यप और अदिति की कन्या इला के बाद उनकी लगभग ग्यारवीं पीढ़ी में भीष्मादि वंशज पैदा हुए थे।

एक बार राजा शान्तनु ने एक नाविक की कन्या पर आसक्त होकर कन्यापिता के पास उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा। इसके लिए उसके पिता ने उससे उत्पन्न होने वाले पुत्र को युवराज बनाने की शर्त रखी। शान्तनु ने उसे स्वीकार नहीं किया परन्तु इस बारे में चिन्तित जरूर रहने लगे। उनके पुत्र देवव्रत ने अपने पिता की गुप्त चिंता का कारण जानकर नाविक के पास जाकर पूछा तो नाविक ने अपनी शर्त दोहराई, यह सुनकर देवव्रत ने अपने पिता के लिए एक कठोर प्रतिज्ञा कर डाली कि नाविक का दौहित्र ही युवराज बनेगा और वह स्वयं आजीवन ब्रह्मचारी रहेगा। पिता शान्तनु का नाविक की पुत्री सत्यवती के साथ विवाह हुआ। पुत्र देवव्रत के त्याग से प्रसन्न होकर शान्तनु ने उसे इच्छामृत्यु का वरदान दिया और देवव्रत का नाम भीष्म प्रतिज्ञा के कारण भीष्म पड़ गया। शान्तनु के सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र पैदा हुए। शान्तनु के स्वर्गवास के बाद चित्रांगद को राज्यासन दिया गया। चित्रांगद नामक ही एक अन्य मायावी गंधर्व राजा चित्रांगद को छल से मारकर भाग गया। उपरान्त देवव्रत या भीष्म ने विचित्रवीर्य को राज्यासन सौंपा और स्वयं उसकी रक्षा करने लगे।

माँ सत्यवती की आज्ञा से भीष्म काशिराज की तीन कन्याओं के स्वयंवरोत्सव में भाग लेने के लिए काशी गए। वे वहां अन्य राजाओं को हराकर अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीनों कन्याओं को अपने राज्य में ले आए। भीष्म ने अम्बा की रूचि के अनुसार उसे उसके मनपसन्द पति शल्य के पास भेज दिया। अम्बा और अम्बालिका दोनों का विवाह विचित्रवीर्य से कर दिया। अचानक विचित्रवीर्य की मृत्यु हो जाने पर सत्यवती ने भीष्म से राज्य ग्रहण करने के लिए या फिर पुत्र उत्पन्न करने के लिए कहा। भीष्म ने किसी गुणी ब्राह्मण के परामर्श पर नियोग विधि से द्वैपायन वेदव्यास द्वारा अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और अम्बिका की दासी से विदुर का जन्म करवाया। धृतराष्ट्र के जन्म से ही अंधे होने के कारण छोटे भाई पाण्डु को राजगद्दी पर बैठाया गया। भीष्म ने गहन विचार पूर्वक धृतराष्ट्र का विवाह राजा सुबल की कन्या गांधारी से, पाण्डु का यदुवंशी भूरसेन की पुत्री पृथा से और विदुर का विवाह महाराज देवक की दासी से उत्पन्न पुत्र के साथ करवा दिया। पाण्डु के कुन्ती से तीन तथा माद्री से दो पुत्र पैदा हुए। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र तथा एक पुत्री दुःशला पैदा हुई।

भीमसेन बचपन से ही अकेले ही धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को खेलों में हरा देते थे। भीम बचपन से ही बहुत अधिक शक्तिशाली थे। दुर्योधन इससे मन ही मन जलता था। एक बार उसने उत्सव में उसे मारने के लिए विषयुक्त भोजन तक खिला दिया तथा उसे बांधकर गंगा में धकेल दिया। संयोग वश उसे कुंती के पिता नाना आर्यक ने डूबने से बचा लिया। युधिष्ठिर ने सोच समझकर यह समाचार गुप्त रखवाया तथा तब से सभी पाण्डव भी सावधान रहने लगे। भीम को फिर भी जिंदा देखकर दुर्योधन का द्वेष और अधिक बढ़ गया।

पाण्डुपुत्रों की विलक्षण योग्यता से धृतराष्ट्र चिंतित रहने लगे। वे युधिष्ठिर के जेठे होने पर भी नियम तोड़कर दुर्योधन और मामा शकुनि आदि मिलकर पाण्डवों को मारने की योजना बनाने लगे। धृतराष्ट्र ने उनकी योजना को सहमति देकर पाण्डवों को वारणावत में रहने के लिए कहा। युधिष्ठिर सब कुछ जानते हुए भी उनसे सहमत हो गए। वारणावत में ज्वलनशील पदार्थों से युक्त एक लाक्षागृह उनके निवास हेतु बनवाया गया था। विदुर की सावध ाानी और कूटनीतिक योजना से संयोगवश उस लाक्षागृह में ठहरा एक नाविक परिवार जलकर भस्म हो गया। इससे कौरव ख़ुश हो रहे थे कि उनकी योजना सफल हो गई। होनी हमेशा अपने बनाए रास्ते से चलती रहती है। धीरे-धीरे युद्ध की नौबत आने लगी। राजा द्रुपद ने पाण्डवों की ओर से अपने ज्ञानी पुरोहित को दूत बनाकर तथा संदेश लेकर दुर्योधन के पास भेजा। भीष्म ने पाण्डवों के संदेश का आदर किया लेकिन कर्ण ने अनादर। उधर से धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों के पास दूत के रूप में भेजा और युधिष्ठिर को साफ कहलवा दिया कि दुर्योधन उसको राज्य कभी नहीं देगा। युधिष्ठिर ने इसके उत्तर में कहलवाया कि वे युद्ध तो नहीं चाहते, पर राज्य पर उनका भी अधिकार है। श्री कृष्ण ने भी युधिष्ठिर की बात का समर्थन किया। महान् भीष्म ने पाण्डवों का श्रेष्ठ संदेश सुनकर अर्जुन को नर और कृष्ण को नारायण बताया तथा उन दोनों के द्वारा कौरवों के विनाश की सम्भावना जताई। कर्ण ने युद्ध का समर्थन करते हुए अर्जुन का वध करने की बात कही। व्यास ने दुर्योधन को समझाने की कोशिश की लेकिन व्यर्थ। अर्जुन ने कृष्ण से युद्ध न चाहते हुए भी युद्ध करने की आवश्यकता जताई। श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से स्वयं दूत बनकर कौरवों के पास जाने की अनुमति मांगी और जाने से पहले हठी दुर्योधन के विरूद्ध युद्ध के लिए तैयार रहने के लिए भी कहते हुए गए। असफल प्रयत्न

के बाद कृष्ण कौरवों के आतिथ्य को यह कहकर अस्वीकार करते हुए वहां से निकल आए कि भोजन या तो विपत्ति में किया जाता है या प्यार भाव में, यहां दोनों में से एक भी मौजूद नहीं है।

हठी दुर्योधन ने कृष्ण से कहा था कि वह बिना युद्ध के सुई की नोक के बराबर जमीन भी पाण्डवों को नहीं देगा। कौरवों की धूर्त मण्डली कृष्ण को कैद करने की योजना बनाने लगी। कृष्ण ने वहां भरी सभा में अपना विराट् रूप भी दिखा दिया था। कर्ण अपनी माँ कुन्ती की बात को भी ठुकरा गया। कृष्ण जी की वापसी पर उनकी बात सुनकर युधिष्ठिर युद्ध की तैयारी में लग गया। संयोगवश युधिष्ठिर और दुर्योधन एक साथ युद्ध के लिए कृष्ण जी से सहायता मांगने के लिए उनके घर द्वारका पहुंचे। प्रातः दुर्योधन थोड़ा पहले पहुंच कर सोए हुए कृष्ण के सिरहाने के पास बैठ गया। बाद में पहुंचा अर्जुन उनके पूज्य चरणों के पास बैठ गया। दोनों की प्रार्थना सुनकर उन्होंने एक ओर अपने आप निहत्थे रहने ओर दूसरी ओर अपनी सेना देने के लिए कहा। अर्जुन ने तत्काल निहत्थे रूप में उन्हें मांग लिया। दुर्योधन ने अर्जुन को मूर्ख समझकर उनकी सेना को सहर्ष मांग लिया। आसुरी सम्पत्ति के नाश की सम्भावना तभी से शुरू हो जाती है जब वह आत्मबल की अपेक्षा बाहुबल को महत्व देता है।

दुर्योधन के सेनापति भीष्म तथा युधिष्ठिर के धृष्टद्युम्न बने। बलराम कौरवों का विनाश न देखने की इच्छा से तीर्थयात्रा पर निकल गए। महर्षि व्यास के धृतराष्ट्र से मिलने के लिए आने पर उनकी प्रार्थना पर उन्होंने संजय को दिव्यदृष्टि प्रदान की और चले गए।

दोनों सेनाएं आमने सामने खड़ी हो गई। अन्धे धृतराष्ट्र ने दोनों पक्षों का हाल सुनना चाहा तो संजय ने बताया कि सारथी कृष्ण ने अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच में लाकर खड़ा कर दिया है। अर्जुन ने जब अपनी विरोधी सेना में अपने परिवार

और गुरूजनों को देखा तो उनके हृदय में शोक और मोह का संचार हो गया। वह कायरता पूर्वक कृष्ण जी से बोला कि वह अपने गुरूजनों को मारकर खून से सने राज्य को नहीं भोग सकेगा। अपनी विजय को भी निश्चित न जानकर वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर कृष्ण की शरण ग्रहण करके उनसे अपने लिए उचित कर्त्तव्य बताने की विनम्र प्रार्थना करने लगा। कृष्ण जी ने संपूर्ण गीता के माध्यम से उसे उपदेश दिया कि वह उनकी शरण ग्रहण करके अपने क्षत्रियधर्म के अनुरूप न्याय के लिए युद्ध करे, जिससे वह समस्त पापों और दुःखों से मुक्त होकर उनको या भगवान् को प्राप्त कर लेगा।

3

स्वधर्म को भगवदर्पण करने की कला

वास्तवमें हम सब भगवान की नौकरी करना पसंद करते हैं, क्योंकि उससे तनख्वाह मिलती है। हम तनख्वाह या कर्मफल में आसक्ति रखते हैं। उसपर अपना अधिकार भी जताते हैं, अपने आस-पास के परिवार और संसार का उसमें योगदान नहीं मानते। यह संसार और संसार के निर्माता के प्रति हमारी कृतघ्नता नहीं तो और क्या है? संस्कृत की क्रिया भज् से भक्ति शब्द बना है। इसका अर्थ होता है सेवा भाव। भगवान् के प्रति सेवाभाव ही भक्ति है। नौकरी भक्ति या सेवा नहीं। नौकरी में तनख्वाह का लालच हमें भगवान् से दूर रखता है, जबकि सेवाभाव हमें उनके समीप ले जाता है। नौकरी हमारे लिए बंधन है, क्योंकि उसमें तनख्वाह के प्रति हमारी आसक्ति है। मालिक नौकर को केवल तनख्वाह देता है, जबकि सेवक पर वह खुद ही न्योछावर होकर उसके जीवन का पूरा योग-क्षेम संभाल लेता है। अर्जुन के सेवा भाव से भगवान् उस पर न्योछावर थे। भगवान् की नौकरी (लालच) भी बंधन है, जबकि उनकी सेवा हमें समस्त बंधनों से मुक्त कर देती है। हमारे जीवन का कल्याण उन (विश्व) की नौकरी में नहीं, सेवा में है। आम तौर पर भक्ति का अर्थ भजन-कीर्तन समझा जाता है, लेकिन भक्ति का अर्थ वास्तव में अपने सहज काम का भगवान् को समर्पण करना है। दुनियां का हर वह आदमी जो अपने काम को भगवान् को समर्पण करता है, भक्त है। महान् अर्जुन ने भगवान् को अपना सहज युद्ध कर्म सौंपा था, न कि

भजन-कीर्तन। वह भी निष्काम सेवा भाव से। जो अपना काम या व्यवसाय हम स्वाभाविक रूप से करते हैं, अगर उस के प्रति हमारे मन में प्रबल संदेह खड़ा हो जाए कि हम इस काम को करें या न करें तो विना संदेह भगवान् की शरण में गए बिना उसका हल नहीं निकल सकता। यही कारण है कि अर्जुन भगवान् श्री कृष्ण की शरण लेकर विनम्र प्रार्थना करते हैं :- ''यत् श्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे'' अर्थात् भगवान्, मैं युद्ध करूं या न करूं, इन दोनों में से जो भी बात निश्चित रूप से मेरा कल्याण करे वह बताओ।

दुविधा में पड़ने पर हम भगवान् से रास्ता पूछते हैं। अर्जुन की तरह ही अगर संसार का कोई भी मनुष्य शिष्य बनकर सर्वगुरू भगवान् की शरण ग्रहण करके उनसे आदरपूर्वक अपने कल्याण की बात पूछता है तो वे सदा अपने शिष्य का कल्याण करने के लिए तैयार रहते हैं। हर आदमी भगवान् का शिष्य होने का अधिकारी है। शर्त यह है कि हममें अपना कल्याण करने की सच्ची प्यास होनी चाहिए। जितनी सच्ची और गहरी हमारी प्यास होगी, उतना ही जल्दी हमारा कल्याण होगा और मजे की बात यह कि हम भगवान् को गुरू धारण करके चलते हैं तो वे हमारे मित्र (सहयोगी) बनकर पग पग पर हमारा पथप्रदर्शन करते चलते हैं। हम क्यों न उन्हें अपना गुरू बनाकर उन्हीं से अपना कल्याण करने की कला सीखें और उसे अपनाकर अपना कल्याण करें तथा उसे अपना कल्याण चाहने वाले मित्रों को सिखाकर उनके कल्याण में भी भागीदार बनें। यही मानवता का रास्ता और प्रचार-प्रसार है।

अगर हम इंद्रियों, मन और बुद्धि के सहित अपने आपको भगवान् को समर्पित कर सकें तो निःसन्देह हमारा कल्याण हो सकता है। इस समर्पण का मतलब है, एकमात्र भगवान् (विश्व संचालक) की शरण ग्रहण करना। समर्पण से हमारा मैं-पन छूट जाता है। शरण्य भगवान् की शरण में जाकर हम सोऽहं भगवान्

ही हो जाते हैं। उस अवस्था में मैं, तू, यह और वह चारों भाव नष्ट हो जाते हैं। शेष रह जाता है, सर्वत्र भगवान् ही भगवान्।

हमारी भारतीय परम्परा हमें हर काम को अपने जीवात्मा के कल्याण के उद्देश्य को सामने रखकर करने की प्रेरणा देती है। शायद इसी को ध्यान में रखकर धर्मार्थ या मानवता के लिए युद्ध करने के लिए धर्मभूमि और तीर्थभूमि कुरुक्षेत्र को चुना गया है, जिससे उसमें मरने वालों का भी कल्याण हो जाए। तीर्थस्थान पर मानवता की भलाई हेतु काम करना पुण्यप्रद होता है, धर्मार्थ युद्ध भी मानवता की रक्षा हेतु सर्वोत्तम धर्म और भगवत्सेवा है। सर्वजनसेवा ही मानवता है। केवल अपनी और अपने लोगों की सेवा दानवता है। स्वार्थी पर भगवान् की कृपा नहीं होती।

संसार के सारे के सारे संघर्ष मेरे और तेरे की भेदबुद्धि से पैदा होते हैं। महाभारत का युद्ध भी मेरे धृतराष्ट्र के पुत्रों और पाण्डु के पुत्रों के बीच भेदबुद्धि के कारण आरम्भ हुआ। पाण्डवों की विजय के शुभ संकेत ये थे कि वे अपने मन के चलाए नहीं चलते थे बल्कि धर्म और भगवान् (मानवता) की आज्ञा के अनुसार चलते थे। जहां धर्म (सर्वमानवहित) हमें पुण्यकर्मों में लगाता है वहां केवल निजी कामना हमें पापों में लगाती है। इतिहास गवाह है कि विजय सदा धर्म या पुण्य (सर्वजन कल्याण) की ही होती है।

संसार में हर मनुष्य को अपने कल्याण (भलाई) की साधना करने का सुनहरा मौका मिला है। चौरासी लाख योनियों की कष्ट भरी भटकन के बाद भगवान् मनुष्य को शरीर केवल अपना कल्याण करने के लिए ही देते हैं। सर्वजनकल्याणकारी योजना में भाग लेने से ही आत्मकल्याण होता है। हम अपने साध्य भगवान् को प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र, समर्थ, योग्य और अधिकारी हैं। हमारी पुरुषत्व-स्त्रीत्व और ब्राह्मणत्व-शूद्रत्व आदि की मान्यताएं केवल सांसारिक मर्यादा की रक्षा के लिए तो उचित हैं परन्तु

भगवान् या परमात्मा को पाने में ये बाधक हैं। ये मर्यादाएं केवल शरीर (दिखावे) से जुड़ी हैं। भगवान् की प्राप्ति शरीर को नहीं बल्कि शरीरी या जीवात्मा को होती है। साधना करने वाला वस्तुतः जीवात्मा ही होता है, शरीर नहीं। जबकि जीवात्मा के कल्याण से उसके शरीर का स्वयं ही कल्याण हो जाता है। सेवा भावपूर्वक स्वकर्म से मानवमात्र का कल्याण होता है।

हम हर समय ''मैं हूँ'' के रूप में अपनी एक लघु सत्ता का अनुभव करते हैं। अगर इस सत्ता में से 'मैं' को अलग कर दिया जाए तो 'हूँ' रूप सत्ता व्यापक ''है'' रूप सत्ता में बदल जाएगी और उसका अनुभव सर्वदेशीय सत्ता के रूप में होने लगेगा। यही सर्वदेशीय सत्ता जीवमात्र का असली रूप होता है। इसमें मैं, तू, या वह आदि भाव लुप्त हो जाते हैं। हूँ केवल मैं के साथ जुड़ता है, है के साथ नहीं। है सबके साथ जुड़ता है।

संसार में केवल शरीर की अवस्थाएं बदलती है, शरीरी या जीवात्मा ज्यों का त्यों बना रहता है। हमारे शरीर के चलने, फिरने और मरने आदि का उस जीवात्मा पर कोई असर नहीं होता। 'है' को स्मरण करने से हमारी साध्य भगवान् के साथ एकता हो जाती है। इसी एकता से हमारा कल्याण हो जाता है। सर्वव्यापी सत्ता 'है' के सिवाय इस संसार में कुछ भी नहीं है। इसे हमारे ऋषियों और महापुरुषों ने स्वयं अनुभव किया और करवाया है।

हमारा शरीर तो केवल काम करने का सामान है, जो केवल दूसरों की (भगवान्) सेवा करने के काम आता है। इसलिए इस नश्वर शरीर को दूसरों की सेवा में लगाने से ही न केवल शरीरी या जीवात्मा का बल्कि शरीर का भी कल्याण हो जाता है। शरीर शरीरी का ही एक हिस्सा है। हमारे लिए इससे बड़ा भगवान् का वरदान क्या हो सकता है कि अगर एक बार इस शरीरी का अनुभव हो जाए तो हम सदा के लिए शोकमुक्त और स्वतन्त्र हो

सकते हैं।

गीताप्रेस के साहित्य के अनुसार शरीर केवल कर्म को करने तथा उसके फल को भोगने के लिए एक उपकरण बना है। शरीर नाश होने वाले संसार का ही तो एक हिस्सा है। हमारी निजी कामना शरीरी (चेतना) को बदलने वाले शरीर के साथ बांधने वाली है, अन्यथा शरीरी तो स्वभाव से ही मुक्त है। निजी कामना के साथ अगर वेदोक्त अनुष्ठान भी किए जाएं तो वे भी हमें चौरासी लाख योनियों के चक्र में डालते हैं। इसलिए हमको सांसारिक अथवा पारमार्थिक कामनाओं से बचकर केवल निष्काम कर्म करने का रास्ता अपनाना होगा। इसके लिए भगवान् या परमात्मा के विधान के अनुसार जो कुछ हमें मिला है, उसको दूसरों (भगवान्) की सेवा में लगाना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। अतः सकाम वैदिक अनुष्ठान को भी भगवान् का रूप मानकर उन्हें भगवान् को सौंपते रहना चाहिए। भगवत् सेवा हमारी सर्वविध भलाई करती है।

हमारे मन की स्थिरता से सांसारिक सफलताएं तो हमें मिल जाती हैं, पर उससे अपना कल्याण नहीं होता। लेकिन बुद्धि की स्थिरता से हमारा कल्याण हो जाता है। बुद्धि की स्थिरता का मतलब है 'अपना कल्याण' रूप उद्देश्य के प्रति हमारी दृढ़ता। अगर हम भगवान् की शरण लेकर अपना काम करें तो हमारी इन्द्रियां भी आसानी से वश में हो जाती हैं और बुद्धि भी स्थिर हो जाती है। केवल अपने पुरुषार्थ के बल पर यह काम होना कठिन होता है, क्योंकि इसमें हमारा 'अहं या मैं' आड़े आता है। उसे भी भगवान् को सौंपने पर हमसे कुछ चिपकता ही नहीं।

हमारी अशान्ति का मूल कारण है, हमारी निजी कामनाएं। जब हम सर्वथा कामनारहित हो जाते हैं तो हमारे जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएं हमारे पास अपने आप चली आती हैं। इसे प्रयोग करके अनुभव किया जा सकता है। भगवान् की प्रतिज्ञा भी तो है

कि वे ऐसे व्यक्ति का योग-क्षेम (सुख-समृद्धि) अपने आप संभालते हैं। देखा गया है कि त्यागी महात्माओं की कुटियाओं में सदाचारी दानी लोगों की भीड़ लगी रहती है और निरंतर यज्ञ होते रहते हैं। यह निष्कामना का ही चमत्कार है। जब निष्कामता से बड़े-बड़े यज्ञ सम्पन्न हो जाते हैं तो क्या हमारी छोटी सी जीवनरूपी नैया भी न चल सकेगी? इसका मतलब हुआ कि सकामता (स्वार्थ) हमारी कायरता है, जबकि निष्कामता (परमार्थ) वीरता। वीर भोग्या वसुन्धरा के अनुसार इस संसार को भी वीर पुरुष ही भोग सकता है, कायर नहीं। निष्काम आदमी ही सच्चा वीर है। जिस व्यक्ति के भीतर सांसारिक कामनाएं हैं, उसको कुछ मिले या न मिले वह हमेशा अशांत ही रहता है। वास्तव में कामना ही दुःख है। अतः कामना के त्याग या निष्कामता में ही सुख और शान्ति है।

दूसरों की भलाई के लिए काम करने से हमारी क्रिया का वेग शान्त हो जाता है, अन्यथा मनुष्य के स्वभावतः रजोगुणी होने से यह वेग बना ही रहता है। आज का तनाव इसी वेग का फल है। अपने जीवन का कल्याण करने के लिए हमको अपना काम बदलने की जरूरत नहीं होती, बल्कि जो काम हम वर्तमान में कर रहे हैं, उसी में फल की इच्छा और आसक्ति का त्याग करके उसको दूसरों (सब) की भलाई के लिए करने से हमारा अपना कल्याण सबके साथ में निश्चित रूप से हो जाता है। कल्याण का मतलब है परम भलाई या सुख। हमारे शरीर के तीनों भाग स्थूल, सूक्ष्म और कारण संसार की सेवा के लिए ही बने हैं। हमारा नश्वर शरीर स्वयं अपने किसी काम तो आता नहीं है पर उसका सदुपयोग अपने जीवन के सार जीवात्मा के कल्याण में जरूर हो सकता है। उसका सर्वोत्तम सदुपयोग यही है कि उसे दूसरों की या संसार रूप भगवान् की सेवा में समर्पित किया जाए। भगवान् ने यह साफ बताया है कि जो ऐसा नहीं करके अपने को मिली

सामग्री को केवल अकेले अपने लिए ही उसका सेवन करता है, वह दंडनीय चोर है। कारण यह है कि अपने कल्याण के साधन अमूल्य शरीर की उत्पत्ति, पालन और विलय के लिए हम संसार रूप भगवान् के कर्जदार बनते हैं। उस कर्ज को न चुकाना अपराध ही तो है। अगर उस कर्ज को चुकाने का संसार (समाज) हमें कोई अवसर देता है तो हमें उसका धन्यवादी ही होना चाहिए। ऐसे अवसर की खोज करना मनुष्य मात्र का फर्ज है।

गीता की एक महत्त्वपूर्ण व्याख्यानुसार हमारे समस्त अपराधों का कारण हमारी कामना है। कामना के साथ अपने लिए कोई भी काम करना पाप या बंधन है। काम की कोई सीमा तो है नहीं, कामनारहित होकर दूसरों के (संसार) हित के लिए काम करना पुण्य है। अपराधों का फल दुःखपूर्ण योनियों में जन्म है तो पुण्य का फल सुखपूर्ण योनियों में जन्म है। वास्तव में हमारा कल्याण (भला) इस पाप-पुण्य के चक्र से बाहर होने में है। शरीरादि पदार्थ या जो कुछ भी हमें मिला है, वह संसार से मिली सामग्री है। यह हम पर संसार रूप भगवान् का कर्जा है, जिसको उतारने के लिए हमको अपने सब काम संसार के हित के लिए करने जरूरी हैं। वे केवल इसी दुर्लभ मनुष्य शरीर में करने जरूरी हैं। अपने इस जीवन को हमें अचूक अवसर के रूप में सदुपयोग में लाना चाहिए। आज का शुभ काम आज ही करने में हमारा भला है, कल पर छोड़ने में नहीं। हमारा जीवन एक सुनहरी मौका है।

हमारा कर्म हमारा पतन ही नहीं करता, बल्कि उस कर्म के प्रति आसक्ति हमें बान्धती है। कर्म करने में मेहनत होती है, आराम नहीं। अपने कर्म को अगर कर्मयोग में बदला जाए तो हमारा कर्म हमारे लिए खुद आराम बन जाता है। हमारा काम आराम का काम बन जाता है। हमारे सारे के सारे काम संसार के अंदर हो रहे हैं, स्व या जीव (चेतना) में नहीं। अपने लिए कर्म

न करके अगर केवल भगवान् की प्रसन्नता के लिए कर्म किए जाएं तो हमारे कर्म हमें नहीं बांध सकते। अपने किसी भी काम, वस्तु और व्यक्ति से कोई भी सुख चाहना काम कहलाता है। मनुष्य केवल काम या कामना के वश में होकर पाप (अपराध) करता है। हम सब को सुख दें जरूर, खुद को सुख चाहें नहीं। कामरूप दोष अपरा प्रकृति (शरीर) में रहता है जो कि जड़ या अचेतन है। चेतना या पराप्रकृति सर्वथा दोष मुक्त और निर्मल बुद्धि से भी परे अहम् के अन्दर रहती है। उस कामरूप दोष के साथ चेतन के तादात्म्य को 'अहम् या मैं' कहते हैं। उस अहम् या तादात्म्य के रहने तक ही काम रहता है। हमारे उस तादात्म्य के टूटने तथा चित्त का विस्तार होने पर हमारे काम का स्थान प्रेम (वयम्) ले लेता है। हमारी साधन यात्रा काम से प्रेम तक है। काम में जहां संसार की ओर आकर्षण होता है वहां प्रेम में भगवान् की ओर आकर्षण होता है। यही उन्मुक्त प्रेमभाव हमारा आत्मकल्याण कर देता है, जोकि हमारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य भी है।

हमारे कर्म जब अकर्म हो जाते हैं तो वे कर्म दिव्य (अस्माकम्) हो जाते हैं, अलौकिक हो जाते हैं। यह दिव्यता अपने कर्मों को कामरहित होकर करने से आती है। भगवान् का काम हमारा काम हो जाता है। हालांकि सकाम कर्मों की सफलता हमें जल्दी प्राप्त होती है, पर वह बांधने वाली बन जाती है। उस प्रकार की सफलता का नाश या अंत भी जल्दी हो जाता है, जबकि निष्कामता से किए गए कर्म का फल कभी नष्ट नहीं होता, वह शाश्वत काल के साथ जुड़ जाता है। यही निष्काम कर्मों की दिव्यता है। सांसारिक वस्तु की इच्छा का नाम काम है। इच्छा रहित मन भगवान् का घर है।

भगवान् कृष्ण ने बताया है कि उन्होंने स्वयं चार वर्णों की रचना की है। इससे स्पष्ट है कि वर्ण जन्म से होता है, कर्म से

नहीं। हमारे कर्मों से वर्ण की रक्षा जरूर होती है। अगर अपने वर्णानुसार कोई कर्म नहीं करेगा तो वर्ण नष्ट हो जाएगा। दूसरे वर्ण का काम सहज नहीं होता। आजकल अपने अपने वर्णानुसार कर्म न करने से समाज में कर्म सम्बन्धी जो अव्यवस्था दिखाई देती है, इसके लिए हमारा चुनावी प्रोत्साहन (वोट बैंक) ही जिम्मेदार है। वर्णानुसार काम न करने से कामनाएं तो पूरी हो सकती हैं, परन्तु भगवान् की प्राप्ति नहीं। वर्णसम्मत काम के विन आदमी प्रायः अशान्त देखा जाता है। ऐसा आदमी दुराचारी बाबा के चंगुल में फंस सकता है।

जिस आदमी के अन्दर कर्ता होने का अभिमान और कर्मफल के प्रति आसक्ति है, वह कर्म न करते हुए भी अपने कर्मों और उसके फलों से जकड़ा हुआ है, गुलाम है। जिसके अन्दर ये दोनों दोष नहीं हैं, वह कर्मयोगी कर्म करते हुए भी मुक्त या आजाद है। कर्मों में सकाम भाव बांधने वाला और निष्काम भाव न बांधने वाला होता है। हमारे कर्ता होने में, कर्म और कर्मफल के साथ संयोग जीवात्मा का होता है, परमात्मा का नहीं। स्वतन्त्र जीवात्मा में समस्त विकार, पाप और ताप हमारे अहम् के सहारे ही टिकते हैं। अहम् के मिट जाने पर साधना करने वाला साध ान में और साधन साध्य में विलीन हो जाता है। उसके बाद परमात्मारूप सत्ता के सिवाय कोई सत्ता बाकी नहीं रहती। ब्रह्म या परमात्मा को जानने से हमारा अहम् या व्यक्तित्व मिट जाता है। व्यक्तित्व का मिटना ही आजादी है। अहम् के मिटने से ब्रह्म को जानने वाला भी बाकी नहीं रहता, बल्कि वह केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है। सोने से बने हुए जेवरों को देखें तो उनमें आपस में बड़ा अन्तर दीखता है, पर दोनों में सोने को देखें तो वह सोना ही सोना है। इसी तरह सांसारिक जीवों और पदार्थों में भी हमें इसी तरह का अन्तर नजर आता है, पर मूल तत्त्व या भगवान्

को देखें तो सब कुछ परमात्मा ही परमात्मा है। जो भक्त आदमी सब जीवों में भगवान् को देखता है, वह हमेशा सभी जीवों के दुःखों को दूर करने का निष्काम होकर प्रयत्न करता रहता है। भगवान् के इस कार्य को करने में उसे अपने में कोई अभिमान नहीं होता।

अपरा शक्ति या संसार और पराशक्ति या जीवात्मा दोनों ही भगवान् की प्रकृतियां या शक्तियां हैं, स्वभाव हैं। शक्तिमान के विना शक्तियों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। पृथ्वी से लेकर अहंकार तक सब अपरा या जड़ प्रकृति है, अचेतन है। अज्ञानवश जीवात्मा उस अहंकार के साथ तादात्म्य करके अपने आप को 'मैं हूँ' ऐसा मान लेता है। यहां 'मैं' अपरा शक्ति और 'हूँ' परा शक्ति है। अहंकार से सम्बन्ध तोड़ने पर 'मैं' का अभाव हो जाता है, जबकि 'हूँ' चिन्मय या चेतनामय सत्तामात्र 'है' में बदल जाता है। हमारी यात्रा 'हूँ' से 'है' तक है, इसी का नाम मोक्ष या जीवात्मा की आजादी है। अहम् को धारण करने से हमारे जीवात्मा ने सम्पूर्ण प्रकृति को अपने में धारण कर लिया है। अपरा प्रकृति को धारण करने का मतलब है–मैं हूँ, यह अभिमान करना। अतः हम अहम् की धारणा को वयम् में बदलने की कोशिश करें।

वास्तव में यह दुनियां भगवान् का पहला अवतार है। अवतार रूप संसार भी भगवान् ही है। संसार की रचना में एकमात्र स्वयं भगवान् ही कर्ता, कारण और कार्य बनते हैं। वृक्ष का बीज तो वृक्ष को पैदा करने के बाद स्वयं नष्ट हो जाता है, लेकिन परमात्मा रूप बीज अनगिनत सृष्टियां पैदा करने के बाद भी ज्यों का त्यों बना रहता है। वह हर दशा में पूर्ण ही रहता है। यही भगवान् की विलक्षणता है।

भगवान् की त्रिगुणमयी माया किसी भी व्यक्ति को नहीं बान्धती, बल्कि मनुष्य स्वयं ही माया को अपनी और अपने लिए मानकर स्वयं ही उसके जाल में बन्ध जाता है। मां तो हमें स्वतन्त्र

करना चाहती है, पर हम खुद ही स्वतन्त्र होना नहीं चाहते। भगवान् का भक्त सब जगह केवल परमात्मा को ही देखता है। भगवान् की शरण ग्रहण करने का मतलब है–'सब कुछ परमात्मा ही है' ऐसा अनुभव करना। यह भगवान् की शरणागति है, उसके अन्दर आया हुआ भक्त केवल शरण्य भगवान् रूप ही शेष रह जाता है।

भगवान् या परमात्मा से पैदा हुई सृष्टि भी भगवान् ही है। वे उसके निर्माता और निर्माण सामग्री स्वयं ही हैं, स्वयं ही सृष्टिरूप हैं। प्यास न हो तो सामने रखा पानी भी नजर नहीं आता, अतः भगवान् को पाने की जिसमें प्यास है, उसको हर जगह परमात्मा जरूर नजर आते हैं। अगर हमारे अन्दर सांसारिक वस्तुओं को पाने की प्यास हो तो सामने सांसारिक वस्तुएं प्रकट हो जाती है। अगर परमात्मा को पाने की प्यास हो तो संसार लुप्त हो जाता है और केवल संसार की प्यास हो तो परमात्मा लुप्त हो जाते हैं। भक्त की नजर में भगवान् और संसार एक ही वस्तु है। भगवान् हर चीज के रूप में हमारे सामने हैं, पर उन्हें पहचानने की नजर चाहिए। लालच करने से वे दुःखद संसार रूप हो जाते हैं।

संसार की प्यास रखने वाले मनुष्य भगवान् से विमुख हो कर केवल अपनी सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए अनेक देवताओं की शरण ले लेते हैं। उनके लिए 'अनेक देवताओं के रूप में भी वही एक भगवान् हैं' यह ज्ञान ढक जाता है। भक्तों के लिए भगवान् (विश्वपरिवार) ही मुख्य है, जबकि केवल सांसारिक मनुष्यों के लिए केवल कामनापूर्ति की मुख्यता है। उनको केवल अपनी इच्छा की पूर्ति चाहिए, देवता या भगवान् नहीं। अगर हम गणेश, दुर्गा, बीजेश्वर, शूलिनी और कथेश्वर आदि देवताओं के अन्दर एक ही भगवान् को देख सकें तो हम भी भक्तों की श्रेणी

में आ जाते हैं। इससे हमारा काम रूप दोष भी मिट जाता है और हम निष्काम होकर परमात्मा को भी प्राप्त कर सकते हैं। देवता भी भगवान् ने ही रचे हैं। वास्तव में संसार के समस्त देवता भगवान् के अधीन ही तो हैं। सभी देवताओं में कामनापूर्ति का अधिकार और योग्यता उसी एक भगवान् के दिए हुए हैं। संसार में एक ही जलतत्त्व परमाणु, भाप, बादल और ओलों के रूप में भिन्न भिन्न दिखाई देने पर भी वास्तव में एक ही जल होता है। इसी तरह एक ही परमात्मा ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म आदि के रूप में भिन्न भिन्न दिखाई देता है। भगवान् के इसी रूप को दर्शाते हुए गीता कहती है–वासुदेवः सर्वम्' अर्थात् सब कुछ परमात्मा है। इसी कारण विश्वकल्याणकारी यज्ञादि कर्मों में सहयोग देना भगवान् की बहुत बड़ी सेवा है, जो कि हमें समस्त कष्टों से मुक्त और स्वतन्त्र करता है। 'मम अमुक इष्टदेव रूपाय परमात्मने नमः' भावना सर्वजनकल्याण कारी है। सच्चा भक्त सोऽहम् होने की कामना भी नहीं रखता। भगवान् केवल ऐसे भक्त को ही शरण देते हैं।

4
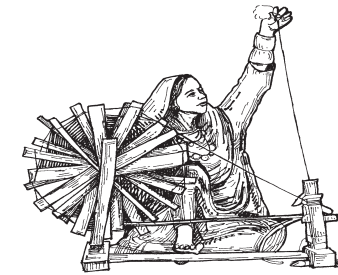
हमारा इष्ट हमारा भगवान्

मनुष्य के शरीरों में पुण्यकर्म करके स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होने वाले देवता मर्त्यदेवता कहलाते हैं। उनकी योनि मनुष्य से ऊंची मानी जाती है। देवताओं की दिव्यता लौकिक और नष्ट होने वाली होती है, जबकि भगवान् की निष्काम उपासना का फल कभी समाप्त नहीं होता। निष्कामभाव से अपना कर्त्तव्य समझकर भगवद् बुद्धि से देवताओं का पूजन करने से हमारी जैसी शुद्धि होती है, वैसी सकामभाव से देवताओं की आराधना करने से नहीं होती। फलेच्छा से की गई देवोपासना का फल जल्दी मिलता है और जल्दी समाप्त भी हो जाता है। देवता ज्यादा से ज्यादा अपने भक्त को अपने लोक (स्तर) में ले जा सकते हैं, वह भी उसके पुण्य बाकी रहने तक। केवल भगवान् के अंश देवताओं की उपासना करने से जन्म-मरण का दुःख भोगना ही पड़ता है, भले ही सुख के साथ। सुख भी एक मीठा दुःख है। अंश में अंशी (भगवान्) अथवा देवता में भगवान् को देखना ज्यादा ऊंची बात है। वास्तव में देवता भी संसार की वस्तु है। हम संसार से ऊपर उठें। अपने कल्याण के साधन में लगे भक्त का कभी पतन नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को शुद्ध श्रीमानों के घरों में जन्म लेकर फिर से भगवान् की साधना करने का दुर्लभ सुनहरी मौका मिलता है। सनातन यात्रा के इस पड़ाव से ही मंजिल आसान हो जाती है।

स्वर्गस्थ देवताओं का सुख पाना कोई ऊंची बात नहीं है। स्वर्ग सुख भी संसार में धनिकों जैसा ही सुख है। देवलोकों में जाने वाले को नित्य (स्थायी) सुख नहीं मिलता। भगवान् की साधना में लगे हुए व्यक्ति को भगवान् ही मिलते हैं, जोकि एक नित्य (स्थायी) सुख है। समझदार लोग स्थायी सुख चाहते हैं। अतः भगवान् के अंश बीजेश्वर देवता में हमें भगवान् के दर्शन करते हुए उनसे कुछ मांगना नहीं चाहिए, बल्कि उनकी प्रसन्नतार्थ ही पूजा करनी चाहिए। यह हमारा कर्त्तव्य अवश्य है, क्योंकि हमारे पूर्वजों ने हमारे जन्म सुख-समृद्धि की कामना से ही उनकी पूजा और अर्चना की थी। उनकी उपासना के फलस्वरूप ही हमारी सत्ता है और हम पर्याप्त सुख भोग रहे हैं। हमारे इष्ट देवता हमारी वंश परम्परा की रक्षा करते हैं। सांसारिक देवता की पूजा से हमें संसार सुख तो मिलता है लेकिन भगवान् नहीं, जबकि देवतारूप भगवान् की उपासना से न केवल भगवान् या नित्यसुख बल्कि सांसारिक सुख अपने आप हमारे पास चला आता है। भगवान् या अंशी अपने भक्त का योग और क्षेम स्वयं वहन किया करते हैं, ऐसी उनकी सनातन प्रतिज्ञा है। भले ही हम कामना से पूजा करें, पर त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यं मेव समर्पये' मानकर करें। कामना भी तेरी और उसका फल भी तेरा, बस तुम्हें प्रसन्न देखना चाहते हैं। समाजसेवा भी वस्तुतः भगवत्सेवा है।

अपने कर्त्तव्यपालन में हमें कमजोर नहीं होना चाहिए। हमें डरना नहीं चाहिए कि भगवान् की शरण लेकर काम करते हुए हम भूखे मर जाएंगे। गंगा माँ केवल पहली डुबकी में डराती है। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अगर यह अनित्य शरीर नष्ट भी हो जाए तो भी घाटा नहीं। इस धर्मकार्य का थोड़ा भी पालन हमें बड़े खतरे (योनिचक्र) से बचाता है। हमारी चेतना न तो किसी को मारती है और न किसी के हाथों मरती है। शरीर को तो निश्चित रूप से एक दिन नष्ट होना ही है। अगर हमारा शरीर विश्वकल्याणरूप भगवान् के कार्य में लग जाए तो हम सबका भला ही भला है, केवल अपना पेट तो हर पशु भर लेता है।

संसाररूप भगवान् की सेवा के इलावा किसी और उद्देश्य के लिए काम करना बंधनकारी या समस्योत्पादक होता है। केवल अपना पेट भरने के लिए संसार में रहने से हमें अपराध ढोना पड़ता है। अतः हमें अपने स्वाभाविक काम में भी आसक्ति न रखकर उसे करना चाहिए। वास्तव में हमारे कर्त्तव्य को निबाहता कोई और है, कर्ता हम अपने आपको मान लेते हैं। कर्त्ता होना ही तो बंधन है। वास्तव में बन्धन ही डर है। अपने स्वाभाविक काम को करते हुए मर जाना भी अच्छा है, बजाए इसके कि हम दूसरों के कर्त्तव्य में हस्तक्षेप का खतरा मोल लें। इसके लिए जरूरी है कि हम अपने कामना रूप शत्रु को मार डालें या नष्ट कर दें। हम भगवान् के तनखाइया नहीं, सर्वथा संरक्षित सेवक हैं।

अगर हम भगवान् या यज्ञ के लिए काम करें तो हमारी कर्तव्य भावना उसमें विलीन हो जाती है। अपनी कमाई को यज्ञ में लगाने के बाद जो धन बाकी बचे उसका अमृतरूप प्रसाद लेने से सनातन परमात्मा (धुरी) की प्राप्ति होती है। चक्के की अपेक्षा धुरी केन्द्र समस्त कष्टों से सदा मुक्त रखती है।

देवथल के पुजारियों और बीजेश्वर के कल्याणों में परम्परा से बीजेश्वर और शिरगुल के बीच संग्राम की कथा यहां बहुत प्रसिद्ध है परन्तु आजकल अनेक लोगों से यह सुना जाने लगा है कि उक्त संग्रामकथा बिल्कुल मनगढ़न्त है। उनका कहना है कि ये दोनों भाई–भाई थे। इस पक्ष में अनेक प्रमाण भी दिए जाते हैं। कुछ लोग यह भी बताते हैं कि ये भले ही भाई भाई थे फिर भी इनका आपस में संग्राम हुआ था। केवल एक तथ्य पर सभी पक्ष सहमत हैं कि बीजेश्वर एक कुशल प्रशासक शिवभक्त और प्रजाप्रेमी राजा थे। इस विषय पर विशेष जानकारी हेतु पण्डित माणिक्य शास्त्री की निःशुल्क पुस्तिका पढ़ें, जो देवथल से प्राप्य है। देवथल मन्दिर कमेटी और पुजारियों के बीच एक विवाद चल

रहा था। मूल बात अहंकार की थी। सबके सहयोग से बने विशाल मन्दिर की सफलता का श्रेय लेने की होड़ थी। समझौते की बात बन नहीं रही थी। श्री चतरसिंह मेहता (ग्राम नाऊं निवासी) के द्वारा समझौते के व्यापक प्रयास हुए, सफलता भी मिली, लेकिन उस लिखित समझौते का अभी तक पुजारियों द्वारा पालन न किया जाना–देवास्था पर एक आघात है। सम्भवतः अशान्ति का मूलकारण उनका आपसी जमीनी विवाद है। कल्याणावर्ग का प्रतिनिधि एक मात्र पढ्यार होता है, केवल वही कल्याणों का पक्ष रखें तो शान्ति स्थापित हो सकती है। परम्परा से मन्दिर कमेटी का प्रधान कल्याणों मे से चुना जाता है। आदरणीय पुजारी वर्ग लिखित समझौते का तुरन्त पालन करें तो निश्चित ही खोई आस्था लौटेगी। देवास्था एक विश्वव्यापी पवित्र भावना है, इसको शीशे की तरह तोड़ देना सर्वथा गलत है। शेष देवेच्छा।

वास्तव में किसी प्रकार से भी स्वार्थ रहित होकर परहितार्थ काम करना ही यज्ञ है। अपने किए हुए कर्म के प्रति आसक्ति रखने वाला आदमी कर्म से बंध जाता है और समस्याओं से जूझता है। हमारी इन्द्रियों के भोग या विषय ही हमारे लिए दुःख के कारण हैं। इन्द्रियस्वामी भगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति भगवान् को सभी वस्तुओं में देखता है और सभी वस्तुओं को मुझ में देखता है, ऐसा व्यक्ति न मुझे कभी खोता है और न मैं उसे कभी खोता हूँ। हम दोनों सदा एक दूसरे को प्राप्त रहते हैं। जो व्यक्ति मायापति भगवान् के प्रति समर्पित होता है, वह आसानी से मायाजन्य सांसारिक कष्टों को पार कर जाता है। मां माया अपने स्वामी के सेवक का ही सर्वविध भरण करती है। वास्तव में भगवान् या वासुदेव ही तो सब कुछ हैं। अतः माया (शक्ति) में भी मायापति का दर्शनार्चन हमें दुःखों से किनारे निकाल देता है, मुक्त कर देता है।

यह सब कुछ जानते हुए हम अपने सहज काम को करते जाएं और भगवान् को याद करते जाएं। भगवान् की शरण ग्रहण करने पर हमें बार बार के जन्म मरण के भय के चक्कर से छुटकारा मिल जाता है। भगवान् की साधना निर्भयता की साधना है। संसार के जीव तो बार बार पैदा होते रहते हैं और बार बार मरा करते हैं। केवल कामनापूर्वक काम करने वाले आने जाने के चक्कर में पड़ते ही रहते हैं। संसार बुरा नहीं, काम या इच्छा बुरी है। काम को त्याग कर संसार भगवान् के रूप में दिखाई देने लगता है। यही हमारी चरम उपलब्धि होती है। निष्काम कर्म करने वाले का योग और क्षेम तो भगवान् स्वयं सम्भालते रहते है। वास्तव में भक्ति के अन्दर ही भगवान् की प्राप्ति के समस्त साधान आ जाते हैं। भक्त को अलग से कुछ भी नहीं करना पड़ता। लक्ष्य भगवान् हो जाए तो सब उपकरण अपने आप जुड़ते चले जाते हैं। कामना भगवान् के लिए की जाए तो वह हमें जन्मान्तरों के चक्कर से छुड़ा देती है।

भगवान् का भक्त कभी नष्ट नहीं होता। अतः हम भगवान् में मन लगाकर उनकी उपासना करते रहें। हमें तो केवल निमित्त या कारण बनना होता है, हमारे लिए काम तो वे वास्तव में खुद कर रहे होते हैं। सभी प्राणियों के कल्याण हेतु काम करने वाले व्यक्ति सदैव भगवान् को प्राप्त रहते हैं। भगवान् के लिए किया जा रहा मेरा काम ही मेरा यज्ञ या समाजसेवा है। सारा संसार भगवान् के हाथ, पैर, पेट, सिर और इंद्रियों से व्याप्त है। वे प्रकाशों के भी प्रकाश हैं। हमारी चेतना हमारे शरीर में बसकर प्रकृति के तीन गुणों को भोगती है। इस अपर शरीर में एक परपुरूष भगवान् रहते हैं। वास्तव में ज्ञानी वह है जो सभी नश्वर जीवों में अनश्वर भगवान् को देखता रहता है। अनश्वर की उपासना हमें अनश्वर बनाती है। जो मनुष्य एक ही केन्द्र से सब वस्तुओं का बनना और उसी में

लीन होना देखता है, वह परमात्मस्वरूप हो जाता है। सर्वसाररूप भगवान् शरीर में रहकर भी न तो कुछ करते हैं और न उसमें आसक्त (मोहित) होते हैं।

संसार में अच्छे गुण मोक्ष दिलाते हैं तो बुरे गुण बंधन में डालते हैं। नरक के तीन प्रकार के दरवाजे हमें नष्ट करते हैं। ये प्रकार हैं, काम, क्रोध और लोभ। इन्हें हमें सदा त्यागना चाहिए। कर्म का त्यागी संन्यासी नहीं होता अपितु कर्म के फल का त्यागी सन्यासी होता है। हम कर्मशील होकर भी संन्यासी हो सकते हैं। वास्तव में कर्म करते हुए कर्म फलेच्छा का त्याग ही संन्यास है। जिसके अन्दर न तो अहंकार का भाव है और न उसकी बुद्धि किसी चीज में लिप्त होती है, वह संसार को मारकर भी न तो मारता और न ही आसक्त होता है। मरता या मारता केवल वही है जो अपना कर्त्तव्य भगवान् (विश्वकल्याण) को समर्पित नहीं करता। भगवान् के द्वारा दिए गए सहज कर्म में लगा आदमी भगवान् को अवश्य प्राप्त होता है। हम अपना काम करते हुए भी संन्यासी हो सकते हैं। अपने सहज कर्म से भगवान् की पूजा ही हमें भगवान् ('विश्व मेरा परिवार' की भावना) को प्राप्त करवाती है।

हमें अपने सहज कर्म को कभी छोटा नहीं आंकना चाहिए। ऐसा कोई भी कर्म संसार में नहीं है जिसकी आलोचना न होती हो, उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। भगवान् के निमित्त काम करने से हमारी सभी कठिनाइयां दूर होती हैं और हम संसार सागर को लांघ जाते हैं। अगर हम अपने स्वाभाविक कर्म से परे हटेंगे तो भी हम बचेंगे नहीं, भगवान् की प्रकृति (मायाशक्ति) हमसे वह काम अवश्य करवाएगी। वह अपने विशेष गुण से हमें आकर्षित करती है। अतः हमें दृढ़ता के साथ भगवान् की शरण ग्रहण करनी चाहिए। इसी से हम समस्त अपराधों से छुटकारा पा सकेंगे, यह भगवान् की हमारे लिए दृढ़ प्रतिज्ञा है। हम सब अपने

कुलेष्ट देवी-देवताओं में परमात्मा के दर्शन करते हुए उनकी पूजा उपासना करें। हमारे देवी-देवता भगवान् के पूज्य अंश हैं और भगवान् स्वयं उनके अंशी। अंश (एकरूप) के बजाए अंशी (सर्वरूप) ही हमारी परमशरण हैं। उसकी शरण ग्रहण करने में ही हम सबका कल्याण है। वास्तव में अंशी ही अंश (विविधरूपों) के द्वारा हमारा आत्मकल्याण करते हैं। अगर हम अपने धर्मस्थानों और मन्दिरों के मध्यम से श्रद्धालुओं और दुनियां को कुछ बांट न सके तो धर्म का प्रयोजन ही वृथा हो जाएगा। हम खुले दिल से अभेद, एकता और समरसता पैदा करके उसे बांटें। इसी में हमारे भारतीय जीवन की सार्थकता है। विविध रूपों वाले भगवान् भी हम से एक केन्द्रीय तत्त्व की उपासना की अपेक्षा करते हैं। वास्तव में संसार के समस्त देवता विराट् संसार रूप परमात्मा के शरीरांग हैं। उन अंगों से एक विराट् परमात्मा की ही पुष्टि होती है।

भोग और संग्रह में लगे हुए सकाम मनुष्यों के लिए तो यह संसार दुःखों का घर है, लेकिन भगवत्सेवा या भगवान् के काम में लगे हुए कामरहित मनुष्यों के लिए यह संसार भगवान् का ही स्वरूप है। पाताल से (पैर) ब्रह्मलोक (सिर) तक समस्त लोकों की प्राप्ति हमारे अपने ही कर्मो का फल होते हैं। सकाम कर्मियों को उन्हीं लोकों (शरीर) की प्राप्ति होती है, भगवान् की नहीं। हमारे शरीर के अन्दर विविध लोकों (क्षमताओं) का वास है। वास्तव में शारीरिक स्तरों से परे रहकर मनोरंजक परिवर्तन का द्रष्टा बनने में ही हमारा आनन्द है।

शरीर या संसार बार बार पैदा और नष्ट होते रहते हैं, लेकिन जीवात्मा और परमात्मा (चेतनाएं) सदा वैसे के वैसे ही द्रष्टा बने रहते हैं। ब्रह्माजी के सूक्ष्म शरीर से भी श्रेष्ठ उनका कारण शरीर या मूल प्रकृति है। उससे भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं। परमात्मा से श्रेष्ठ कोई नहीं है। आज तक अनगिनत ब्रह्मा जी

(मस्तक) उत्पन्न और विलीन हो गए हैं, लेकिन परमात्मा (चेतना) वैसे के वैसे ही बने हुए हैं। सोऽहं के अनुभव कर्ता या परमात्मा को प्राप्त हमारे साधक जीवात्मा को फिर से संसार (शरीर) में नहीं लौटना पड़ता। लौटना उसको पड़ता है जो संसार की किसी भी वस्तु के प्रति आसक्ति (ममता) रखता है। जीवात्मा की मुक्ति के रास्ते में ब्रह्मलोक (मस्तिष्क) एक स्टेशन की तरह है। वहां केवल सांसारिक वस्तुओं के प्रति वासना (चाह) रखने वाले लोग ही उतरते हैं। जिनमें सांसारिक भोगों की वासना (ममता) नहीं होती वे वहां नहीं उतरते, परमात्मा तक पहुंच जाते हैं।

वेदों का अध्ययन, यज्ञ, तप और दान आदि पुण्य कर्म हमें ज्यादा से ज्यादा ब्रह्मलोक (सहस्रार या पूर्णता) तक पहुंचाते हैं। वहां पुण्य का फल भोगकर वे फिर से संसार (शरीर) में लौट आते हैं। हमारे सकाम कर्म के फलों की कालसीमा होती है, निष्काम की नहीं। भगवान् के आसरे जीने वाला भक्त उस ब्रह्मलोक से भी आगे अंतिम परमात्मा के धाम तक पहुंच जाता है, जहां से उसे वापिस संसार (शरीर) में नहीं आना पड़ता। निष्कामता का फल ही परमानन्द की प्राप्ति है जो केवल परमात्मा में ही सुलभ है। यही स्थायी लाभ है।

महाप्रलय के समय प्रकृति में लीन हुए जीवों के कर्म जब पककर फल देने के लिए तत्पर होते हैं तो भगवान् में 'बहुस्यां प्रजायेय' अर्थात् मैं अनेक रूप धारण करूं-ऐसा संकल्प होने से महासर्ग या सृष्टि की रचना का कार्य आरम्भ हो जाता है। उस समय भगवान् उन जीवों के परिपक्व कर्मों का फल देने के लिए उनको शरीर देकर आत्मशोधन का सुनहरी अवसर प्रदान करते हैं। द्रष्टा भगवान् क्रियाशील प्रकृति को साथ लेकर ही सृष्टि की रचना करते हैं। हालांकि भगवान् का अपनी शक्ति पर शासन है, फिर भी उनमें कर्म के साथ लिप्तता नहीं आती और हमेशा जल में

निर्लिप्त (अस्पृष्ट) कमल के पत्तों के समान बने रहते हैं। भगवान् केवल उन्हीं जीवों की रचना करते हैं, जिन्होंने प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है, स्वतन्त्र जीवात्माओं की नहीं। प्रकृति में कितनी ही उथल-पुथल हो जाए, परमात्मा सदा वैसे के वैसे ही स्वतन्त्र बने रहते हैं।

परमात्मा सदा स्वतन्त्र हैं। उनका अंश केवल जीवात्मा ही सुख की इच्छा से प्रकृति के पराधीन हो जाता है। अपना कल्याण चाहने वाले साधकों की रूचि, योग्यता और विश्वास अलग अलग होने के कारण उनके आत्मकल्याण के साधन भी अलग अलग होते हैं। वे जिस भाव (रूप) की भी उपासना करते हैं, वह भगवान् के समग्र रूप की ही उपासना होती है। अमृत (चेतन) भी भगवान् हैं तो मृत्यु (अचेतन) भी भगवान् हैं। भगवान् ही सूर्य देवता के माध्यम से जल का संग्रह करके उसे संसार के कल्याणार्थ बरसाते हैं। भगवान् ही संग्रह करने वाले हैं और वे ही बांटने वाले भी हैं। अनुकूल (मित्र) भी वे ही हैं, प्रतिकूल (शत्रु) भी वे ही हैं-अतः समग्ररूप हैं। जबकि भक्त के विश्वास में सब सत् ही सत् या भगवान् ही भगवान् है। भक्ति के मार्ग में केवल अद्वैत (विश्व की एकरूपता) का भाव ही मुख्य रहता है। 'सब कुछ भगवान् ही है'- यह भाव सबसे बढ़िया है, जिसे अर्जुन ने सहर्ष अपनाया है। भक्त कभी भी असत् (प्रतिकूल) की उपेक्षा नहीं करता बल्कि सत्-असत् दोनों में एकमात्र भगवान् को ही देखता है। आज धरती का अतिदोहन वे ही लोग कर रहें हैं जो असत् में भगवान् को नहीं देखते। गरीब, कमजोर और नासमझ में भी भगवान् है। हमारे अपने सहित इस संसार में जो कुछ भी दीखता है, वह भगवान् ही भगवान् है। इस संसार में जो क्रियाशील दीख रही है वह भगवान् की लीला है। भगवान् की लीला को देख-देख कर हमें सदा आनन्दित रहना चाहिए। उनकी लीला के अन्दर में ही हमारा

मनोरंजन, आनन्द और कल्याण और एकरूपता है। भगवान् की लीला भी भगवान् ही है। उनकी लीला की अनुभूति भी भगवान् की अनुभूति है। हमारे महामन्त्र गायत्री में भी तो समग्र भगवान् से आत्मकल्याणार्थ प्रेरणा मांगी गई है। गायत्री माँ की मूर्ति पाताल से ब्रह्मलोक तक के समस्त अच्छे बुरे पदार्थों की मूर्ति है। जोकि पूजा से हमको परस्पर जोड़ती है।

देवताओं का उपासक देवताओं के नौकर की तरह है। उसको उस उपासना का वांछित फल या वेतन जरूर मिलता है, जबकि भगवान् का उपासक उनके परिवार के भागीदार सदस्य की तरह है, जिसको विना मांगे सब कुछ मिल जाता है। अपने प्यारे बच्चे का पालन माँ अपने हाथों से खुद करती है, नौकरों से नहीं करवाती। उसी तरह भगवान् भी अपने प्यारे भक्त (पुत्र) का योग-क्षेम या पालन-पोषण खुद अपने हाथों से करते हैं।

अगर साधक में कोई कामना न हो और सर्वत्र भगवद्बुद्धि हो जाए तो वह चाहे किसी भी तत्त्व (देवता) की उपासना करे, वह वास्तव में भगवान् की ही उपासना हो जाएगी। वैदिक मत के अनुसार इस प्रकार की उपासना या पूजा कभी विधिहीन नहीं रहती, वह विधिपूर्वक हो जाती है। हमारा शुद्ध भाव से किये कर्म का समर्पण ही विधि है और अशुद्ध भाव से समर्पण अविधि या अशास्त्रीय है।

गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित गीता प्रबोधनी के अनुसार विविध देवताओं की उपासनाओं के लिए विविध नियम होते हैं परन्तु भगवान् की उपासना के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है, वे तो केवल शुद्ध समर्पण भाव के भूखे हैं। भगवान् की उपासना में केवल प्रेम और अपनेपन की प्रधानता होती है, विधि या नियम की नहीं। भगवान् हमारे भाव को ग्रहण करते हैं, नियम को नहीं। विदुरानी जी ने श्रद्धा के साथ केले का छिलका भेंट किया तो

भगवान् उसे सुप्रसन्न होकर खा गए। भगवान् के लिए निर्मल भाव सर्वसुलभ और सर्वश्रेष्ठ स्वाद व्यंजन है। वास्तव में निष्कपट भाव से समर्पण ही प्रशस्त विधि है। उपासना में निष्कामभाव ही प्रमुख है।

सच में देखा जाए तो भक्त अपने आपको ही भगवान् को भेंट कर देता है। स्वयं उनको समर्पित हो जाने से उसके द्वारा किए जाने वाले समस्त कर्म भी अपने आप भगवान् को भेंट हो जाते हैं और अधिक कुछ करने की जरूरत बाकी नहीं रह जाती। उनके सामने हमारी वस्तु का कोई महत्व नहीं, बल्कि हमारी वस्तु के पीछे के समर्पण भाव का महत्व है। शुद्ध भाव या आत्मभाव से भगवान् को समर्पित हमारी चीजें अपने आप अनंत गुणा होकर वापिस हमें मिलती है। फिर भी उसके प्रति लालच हानिकारक है। शुद्ध भाव के साथ समर्पित वस्तु (भोजनवस्त्रादि) अपने आप शुद्ध हो जाती है। वह अशुद्ध नहीं रहती, प्रसाद बन जाती है। यह अलग बात है कि विदुरानी ने प्रेमभाव की विह्वलता (बावलेपन) में गूदे की जगह छिलका दे दिया था। गोपियों (जीवात्माओं) ने प्रेम भाव की विह्वलता में रासलीला (भगवन्मिलन) में जाते हुए जल्दी-जल्दी (बेसुधी में) अपने कपड़े भी उलट-पलट कर पहन लिए थे। उन्हें बेसुधी ही पसंद है। कम पढ़ा-लिखा प्रेमी भक्त अगर विष्णाय नमः का उच्चारण भी करता है तो उसकी व्याकरण की अशुद्धि भी माफ है। सब जगह भाव या प्रेम (उदार हृदय) की प्रध ाानता है और उस में कुछ उलट-पलट होना भी क्षम्य होता है। 'भाव ग्राही जनार्दनः' अर्थात् भगवान् तो भावग्राही हैं, प्रेम के भूखे हैं। इस भाव को पाने के लिए स्वयं भगवान् भक्त से भी कई गुना आगे बढ़कर मिलने आ जाते हैं। अगर हम भगवान् को अशुद्ध या पापपूर्ण वस्तु (जीवबलि) आदि भेंट करते हैं तो वे कई गुना पापपूर्ण वस्तुएं हमें प्रदान करते हैं। इस प्रकार की वस्तु के

समर्पण का बुरा फल भी अनन्त गुणा दण्ड लेकर हमारे सामने आता है। बकरे आदि की बलि अनन्त हिंसा या हानि के रूप में हमारे सामने प्रकट हो जाएगी। दूसरों के हित के लिए काम करना शुभ कर्म है लेकिन केवल अपनी भलाई के लिए काम करना अशुभ कर्म है। अपनी भलाई को सबकी भलाई से जोड़ना बड़ी बात है। सच्चा भक्त केवल अपने भले कामों को ही भगवान् की सेवा में भेंट करता है, हिंसाजन्य बुरे कामों को नहीं।

भगवान् कृष्ण के अनुसार किसी भी वर्ण, आश्रम या वर्ग का मनुष्य भगवान् को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। पृथ्वी में जल सब जगह पाया जाता है, लेकिन कुएं में वह विशेष रूप से प्रकट होता है। इसी तरह भगवान् संसार की सब चीजों में पाए जाने पर भी भक्तों में विशेष रूप से प्रकट होते हैं। भक्तों के लिए वे अपना आवरण हटा देते हैं, लेकिन संसार में आसक्त जीव के लिए नहीं। भगवान् के सिवाय दूसरे (प्राणी या पदार्थ) के साथ अपना सम्बन्ध मान लेना ही हमारी बड़ी भूल, मोह या बन्ध ान है। अतः क्यों न हम अपने आपको भगवान् को समर्पित कर दें जो न केवल हमारा योग-क्षेम वहन करते हैं, बल्कि हमारे जीवात्मा का कल्याण (विलय) भी कर देते हैं। यही जीवमात्र का परम उद्देश्य भी है। अतः हमें हमेशा भगवान् को अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिए। बड़े से बड़ा भौतिक आविष्कार भगवान् को नहीं जान सकता। देवताओं की सात्विक दिव्यशक्ति और दानवों की तामसिक मायाशक्ति भगवान् के सामने मंद पड़ जाती है। हम स्वयं ही स्वयं को जान सकते हैं। केवल आत्मा ही आत्मा को जान सकता है। ज्ञान और ज्ञेय हम स्वयं ही हो जाते हैं। समग्र रूप हो जाते हैं।

देवता, पितर, गंधर्व, भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, पूतना और बालग्रह आदि चौरासी लाख योनियों और अनन्त ब्रह्मांडों के

मूल कारण एकमात्र भगवान् हैं। जिस किसी भी वस्तु के प्रति हमारा आकर्षण होता है उसमें वास्तव में भगवान् का ही आकर्षण या तेजस् है। परन्तु हमारी लिप्सा के कारण वह आकर्षण भगवत्प्रेम में नहीं बदल पाता, संसार से बांध देता है। सांसारिक चीजों का गुलाम बना देता है। कवि या लेखक के अन्दर उन्हीं भगवान् की शक्ति काम करती है। संसार की योग्याताओं में भगवान् ही समाए हैं। सूर्य के अन्दर का तेज भी वास्तव में भगवान् का ही तेज है। उस अनन्त भगवान् के एक ब्रह्म कण के अन्दर भी उसकी अनन्तता समायी हुई है।

अपने जीवात्मा के कल्याण के लिए हम अपने उद्योग में कोई कमी न रखें, उसका अभिमान भी न करें। हमें तो केवल निमित्त मात्र बनना है, अपने उद्योग में, बाकी हमारे भगवान् हमारा सब कुछ स्वयं संभाल लेंगे। उन्होंने अर्जुन को भी संभाला, जनक और राधा को भी। हमारी अपनी लिप्सा के कारण ही हमें संसार में जड़ता, भौतिकता और मलिनता नजर आती है। अगर हम अपनी इस भोगेच्छा पर विजय पा सकें तो संसार में सब कुछ विराट् रूप में ही नजर आएगा। इस विराट् के काम आनेसे ही हमारा जीवन सार्थक हो सकेगा, अन्यथा व्यर्थ है। हमारा एक मात्र सहारा भगवान् होना चाहिए। हमारी भक्ति या समर्पण भाव में ही भगवान् का दर्शन (अनुभव) करवाने की भी शक्ति है। भक्ति साधन की यह विशेषता सबसे बड़ी है कि यह हमें समग्र भगवान् के दर्शन और प्राप्ति सुलभ करवा देती है। मोक्ष, तत्त्व, ज्ञान, आत्मसाक्षात्कार, निर्वाण और कैवल्य से भी आगे की अगर कोई वस्तु है तो वह है प्रेम। वास्तव में हमारा जीवन बना ही भगवान् के प्रयोजन के लिए है। विश्व के साथ प्रेम पाने के बाद कोई वस्तु पाने को बाकी नहीं बचती। समस्त जीवों में अपनापन ही हमारा सर्वस्व है।

भगवान् तक केवल परमात्मा का अंश हमारा जीवात्मा ही पहुंच सकता है, बुद्धि नहीं। जो वहां से आया है वही वहां तक पहुंच सकता है। भक्त में मित्रता और करूणा होती है जो कि ज्ञानी में नहीं होती। भक्त को न तो अनुकूलता से राग होता है और न प्रतिकूलता से द्वेष। वह सदा समान और प्रसन्न रहता है। वह तो केवल भगवान् के विश्वकल्याणकारी प्रयोजन के लिए समर्पणपूर्वक क्रियाशील रहता है।

भगवान् अपने सभी अंगों से अपनी सभी क्रियाएं कर सकते हैं। उनके सभी अंगों में भी सब अंग एक साथ विद्यमान रहते हैं। भगवान् में अणु और अणु में भगवान् विद्यमान हैं। उनके छोटे से छोटे अंश या परमाणु में भी उनकी सब की सब इंद्रियां विद्यमान हैं। सोने की एक डली में पता नहीं चलता कि उसमें कहां जैसा कौनसा जेवर छिपा है। उसी तरह सबसे रहित भी वही भगवान् है और सबके सहित भी वही भगवान् है। वह पहले भी सम्पूर्ण था, अब भी है और हमेशा रहेगा भी। पैदा करने वाले भी भगवान् हैं और पैदा होने वाले भी खुद भगवान् हैं। दोनों एक हैं, जुड़े हैं। पालने वाले भी और पालित भी। मारने वाले भी भगवान् हैं और मरने वाले भी भगवान् हैं। यही भगवान् की लीला है, जिसे महसूस कर भक्त सदा आनन्दित होता रहता है। हम सब जीव भगवान् के महाशरीर के घटक या पुर्जे मात्र हैं।

शब्द को कान प्रकाशित या प्रकट करता है। रस को जिह्वा, पांचों इंद्रियों को मन, मन को बुद्धि और बुद्धि को जीवात्मा और जीवात्मा को परमात्मा प्रकाशित करता है। ज्योति या प्रकाश ज्ञान को कहते हैं। परमात्मा स्वयं प्रकाश है। उसे कोई भी प्रकाशित नहीं करता। वह खुद ही खुद को जानता है। जैसे सूर्य में कभी अंधकार नहीं आता, वैसे ही परमात्मा में कभी अज्ञान नहीं आता। वे स्वयं जानने वाले, ज्ञान और जानने योग्य हैं, यही उनकी

भगवत्ता है, जिस पर हम सब न्योछावर हैं। हमारा यह विश्व ही एक परिवार या ब्रह्म है, जिसकी सेवा हेतु हम सब समर्पित हैं। विश्वरूप भगवान् ही हमारा मूल, कार्यशाला और गंतव्य है, उसकी सेवा में ही हमारे समस्त सुख निहित हैं। भगवान् हमारे सनातन् उपास्य हैं। गायत्री आदि समस्त मन्त्रों के उपास्य वही एकमात्र परमात्मा हैं। जो उपासक समस्त मन्त्रों में केवल उन्हीं को देखता है, वह उन्हीं को पाता है।

5
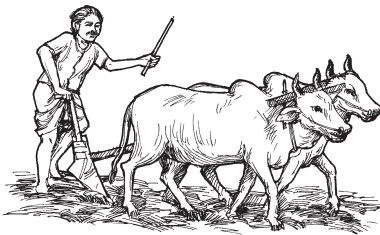
हमारा पारम्परिक स्वास्थ्य विज्ञान

पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे स्वास्थ्यज्ञान से सम्बन्धित विषय हमारे अन्दर संक्रान्त होते रहते हैं, यह सनातन श्रृंखला है। गत पीढ़ियों की तरह हमारा भी फर्ज बनता है कि स्वास्थ्य विज्ञान के अनुभवों को अगली पीढ़ियों को सौंपा जाए। विशेषकर स्वदेशी अनुभव नयी लहर की चमक में निष्प्रभ से होते जा रहे हैं। स्वास्थ्यविज्ञान में व्यक्तिगत रूचिवश स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद नुक्ते यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ। हमारे एक गुरू जी ने बताया था कि स्वधर्म या कर्मप्रेमी के लिए स्वास्थ्य कभी चिंता का विषय नहीं होना चाहिए। मैं सादर उनकी बात को स्वीकारता हूँ परन्तु जिनको स्वधर्म का ही पता नहीं उनका क्या होगा? अतः सम्मान्य प्रेमी पाठक अगर इन संकेतों का लाभ उठाते हुए अपने स्वधर्म की ओर बढ़ेंगे तो आपका स्वास्थ्य हमेशा के लिए आपका वफादार बन जाएगा। यहां हमारे घरों की औषधीय सामग्री की जानकारी मात्र प्रस्तुत है, शेष अनुभव आपका :-

1. वातरोगों में अनुपान-सीलगर्म दूध या पानी।
2. कब्ज-सवेरे खाली पेट सीलगर्म पानी+चुटकी भर काला नमक।
3. कोई भी शरीर विकार-250 ग्राम मेथी+100 ग्राम अजवायन+50 ग्राम कलजीरी सेंक पीसकर मिश्रण शीशी में, रात को आधा चम्मच सील गर्म पानी से।
4. मुंह के छाले-तुलसी के पत्ते चूसना।
5. बुखार-घी में भुना हींग सील गर्म पानी या तुलसी की चाय से
6. मोच-भीगी हल्दी के गर्म सेंक
7. बुखार-धनिए का काढ़ा या सितोपलादि चूर्ण+शहद
8. मूत्र का रूकना या जलन-पिसा धनिया कोसे पानी से

9. पेट दर्द या चक्कर आना–आंवला चूर्ण (खून की कमी में भी)
10. सूजन या जोड़ों का दर्द–नींबू की एक फांक गर्म करके मलना।
11. खून की कमी–टमाटर
12. यूरिक एसिड का बढ़ना–प्याज का सलाद
13. अंग दर्द–निचोड़े हुए तौलिए के गर्म सेंक
14. बार बार मूत्र–आंवला चूर्ण
15. बुढ़ापे के रोग–रात को एक चम्मच अश्वगंधा चूर्ण दूध के साथ
16. दस्त–आधा चम्मच पिसा धनिया कोसे पानी से या बिल्वचूर्ण
17. खुजली–एक चम्मच हल्दी या त्रिफला मिले पानी या सम्भालु के काढ़े से स्नान
18. सर्दी के रोग–पिसी बड़ी इलायची अथवा काली मिर्च+शहद से
19. गर्मी से होने वाले रोग–सौंफ+चीनी चूसना
20. पाचन शक्ति की कमजोरी–अजवायन+सेंधानमक पीसकर कोसे पानी से लें।
21. असंतुलित ब्लडप्रेशर–भोजन के बाद अर्जुनारिष्ट दो चम्मच+कोसा पानी
22. दाढ़ का दर्द–दर्द वाले स्थान पर लौंग रखना
23. खांसी, दमा–नमक के गरारे करके लौंग या अजवायन चूसना
24. प्रोस्टेट बढ़ना या पथरी–पुनर्नवारिष्ट या चन्द्रप्रभवटी
25. बार बार शौच लगना–चित्रकादि वटी कोसे पानी से
26. सर्दी के रोग–आधा चम्मच सितोपलादि चूर्ण+कल्पतरूरस+शहद
27. मूत्र रोग–रात को एक गोली चन्द्र प्रभावटी दूध से
28. नकसीर–नथुनों में कुछ दिनों तक रोज गाए का घी लगाना
29. बेहोशी–ठंडा पानी पिलाना
30. पाचन की कमजोरी–भोजनोपरान्त अजवायन+सौंफ+चीनी चूसें
31. सर्व रोग या त्रिदोषशामक–रोज कोसे पानी के साथ एक चम्मच आंवला चूर्ण
32. दमा–दालचीनी और काली मिर्च शहद के साथ चबाना
33. दर्द–दर्दस्थान पर सहने योग्य गर्म ग्वारपाठे का गूदा बांधना
34. घाव में जलन–गाए का पिघला घी लगाना
35. खून बहना–ठंडे पानी की गीली पट्टी
36. समस्त स्त्रीरोग–आंवला चूर्ण कोसे पानी से
37. पेट की गैस–अजवायन+मिश्री चूसना या अजवायन+कालानमक+गर्मपानी
38. घाव–पिसी मेथी+गर्म पानी का लेप
39. हड्डी का दर्द–एरण्ड के तेल की मालिश
40. जटिल रोग–प्रतिष्ठित महामृत्युंजय यंत्र का नित्यपूजन

41. लो ब्लडप्रेशर–भोजन में नमक की मात्रा कम लेना
42. दर्द, चोट, मोच या घाव–ग्वार का गूदा गर्म करके बांधना
43. बुखार–तवे पर भुना हल्का सा नमक कोसे पानी से
44. खट्टे डकार या एसिडिटी–अविपत्ति कर चूर्ण कोसे पानी से
45. पाचन विकार–लवण भास्कर चूर्ण कोसे पानी से
46. खून की कमी–दाडिमावलेह
47. कफजन्यरोग–पिसी काली मिर्च + शहद
48. फोड़ा–पीपल के पत्ते में गाय का घी लगा कर उसे सेंक कर बांधना
49. सूजन–नमकीन पानी की गर्म पट्टी
50. घाव–हल्दी का चूरा + घी लगाना
51. अदृश्यबाधा–हवन की भस्म का तिलक लगाना व खाना
52. खांसी या दमा–वासावलेह या शंख भस्म
53. जोड़ों का दर्द–आधा चम्मच पिसी मेथी दूध या घी के साथ
54. बुखार, कब्ज–ईसबगोल गर्म पानी से
55. सिरदर्द–नींबू के पत्ते मसलकर सूंघना
56. मूत्र रूकना–पिसा जीरा कोसे पानी से
57. पथरी–त्रिविक्रमरस
58. वातवृद्धि–अजवायन
59. कफ–काली मिर्च
60. पित्त–छोटी इलायची
61. छाती जमना–कपूर + गाय का घी छाती पर मलना
62. सर्दी के रोग– काली मिर्च + दालचीनी की चाय
63. बच्चों के रोग–नागेश्वर रस की चौथाई गोली कोसे पानी से
64. मोटापा–दशवस्तुचूर्ण (गांव शशल के श्री ईश्वरदत्त जी का अनुभव)
65. पेट के रोग–काकायन वटी
66. दाद–दाडू का छिल्का पानी के साथ पीसकर लगाना
67. बवासीर–सवेरे खाली पेट अर्शकुठारस या चित्रकादि वटी ठंडे पानी से
68. पेट के रोग–कुमार्यासव या एलोवेरा रस
69. पाचनविकार–कल्के. फास
70. पाचन विकार–कल्के. फास
71. एनीमिया–फैरम फास
72. दमा–नैट्रम सल्फ

73. एसिडिटी–नैट्रम फास
74. नशों की आदत–फैरम फास
75. जोड़ दर्द–नैट्रम फास
76. गुदा रोग–नैट्रम मयूर
77. बार बार पेशाब–कल्के.फास
78. मासिक अनियमितता–काली फास
79. नकसीर या पित्त बढ़ना–फेरमफास
80. मोटापा–नैट्रम मयूर

''शरीररक्षक आवश्यक जानकारियां''

1. स्वास्थ्य वर्धक–हमारी इच्छाशक्ति
2. नींद–प्रोटीन की उत्पादक
3. सीमित चाय–वायुशामक
4. लाल मिर्च–आग
5. हल्की दालें–मूंग और मसर
6. लाभदायक पानी–ताजा और छना
7. स्नायु निर्माता–दूध (कमजोरी निवारक)
8. समस्त गुण युक्त–सफाई
9. सत्य का स्त्रोत–आत्मा (जीवन का सार)
10. आत्मा का पोषक–वीर्य
11. अचूक दवा–राम (भगवान्) का नाम
12. आप्रेशन की नौबत–भगवान् पर भरोसा न रहना
13. शरीर–राम या भगवान् का मन्दिर
14. कृत्रिम दवाओं का लाभ–खाने पीने की मौज (अभारतीयता)
15. प्रोटीन का भण्डार–बादाम
16. आप्रेशन का कारण–मन की कमजोरी
17. आत्मा स्वस्थ–शरीर स्वस्थ
18. सृष्टि का बीज–वीर्य
19. मनोबलवर्धक–अपनी गलती की सजा खुशी से भोगना
20. बुखार शामक–रामनाम का जप
21. भोजन का समय–भूख

22. स्वास्थ्य की ओर पहला कदम–सफाई
23. शरीर का प्रयोजन–आत्म कल्याण या संसार के उपकारों का कर्जा चुकाना
24. ब्रह्मचर्य–भगवान् को पाने का तरीका
25. रोगों का मित्र–निठल्लापन
26. इंद्रियविजय का दरवाजा–स्वाद पर विजय
27. त्याग योग्य शरीर–पके फल की तरह पूर्ण आयु भोगकर
28. शरीर का लक्ष्य–संसार में परिवार की तरह जीना
29. रोगों का कारण–आत्मा की बात न मानना
30. मैदे से हानि–आंतों में चिपकन पैदा होना
31. डिब्बाबन्द पदार्थ–विटामिन लैस
32. पीलिया का कारण–प्रोटीन की कमी
33. मनोरोग का कारण–तनाव
34. तनाव शामक–शवासन या नींद
35. देर तक सुरक्षित–रस, भस्म, आसव और अरिष्ट
36. ग्राह्य भोजन–अपनी तासीर (प्रकृति) के अनुसार
37. रोग कारण–प्रज्ञापराध या अपना कसूर
38. बुखार का कारण–दूषित पानी
39. हानिकारक फल–जीव–जन्तुओं के जूठे व सड़े
40. आत्महत्या का प्रेरक–मानसिक तनाव
41. शरीररोग कारण–पेट में जमा मल
42. शरीर के लिए आवश्यक सलाद– 75 प्रतिशत
43. क्रोध–एक प्रकार का मनोरोग
44. यौवनवर्धक–आंवलों के उत्पाद
45. सूर्यवत् शक्ति का शोषक–पित्त (गर्मी)
46. चन्द्रमा के समान स्नेहवर्धक–कफ (जलीय पदार्थ)
47. गठिया और मधुमेह में हितकर–मेथी घी के साथ
48. प्राकृतिक एंटीसेप्टिक–हल्दी का चूर्ण
49. पोषक पदार्थ–टमाटर और सोयाबीन के उत्पाद
50. कद्दू–वातवर्धक
51. दही–कफ वर्धक
52. वातशामक–मेथी और हींग का तड़का
53. हल्का भोजन–खिचड़ी

54. कफ शामक गर्म दवा–शहद
55. हलवा–पचने में भारी
56. कैंसर के प्रमुख कारण–बीड़ी, सिगरेट, शराब और डर
57. मूत्र विकारों में लाभदायक–छोटी इलायची
58. हृदय का दुश्मन–तनाव
59. समस्त रोगों या तीनों दोषों में अनुपान–शहद
60. पित्त या गर्मी से पैदा रोगों में हानिकारक–मसाले
61. फाइवर स्त्रोत–पिसी मेथी (पाचक)
62. रोग चिकित्सा का आधार–व्यक्तिगत तासीर (प्रकृति)
63. तासीर का आधार–किसी को बैंगन बायरा किसी को बैंगन पच
64. जीवनीशक्ति की रीचार्जर–नींद
65. रक्त निर्माता–बारीक चबाना
66. सौ रोगों की एक दवा–शुद्ध हवा
67. कफ बढ़ाने वाली ऋतु–बसन्त
68. गुर्दों का भार–अधिक भोजन
69. मृत भोजन–मैदा, तला हुआ और खट्टा
70. आयुवर्धक–अपने जीवन के सार रूप आत्मा की सलाह
71. भोजन का लक्ष्य–वीर्य (जीवन) निर्माण
72. फुलकड़ी के दुश्मन–बांस और आंवले के पौधे
73. गुर्दों का काम–खून को छानना
74. कृत्रिम दवा में दोष–टॉक्सिन (मल) को न निकाल पाना
75. पाचकाग्नि का पंखा–ऑक्सीजन
76. चबाना सिखाने वाला जानवर–बकरी
77. गुर्दों के दुश्मन–चीनी, नमक, आराम, अति भोजन और कम चबाना
78. यूरिक एसिड का निर्माता–शरीर या पेट में जमा टॉक्सिन
79. विटामिनों का भण्डार–एलोवेरा
80. खट्टी डकार का कारण–अति पित्त
81. मूत्रल और ज्वरनाशक–अजवायन
82. वात और कफशामक–अजवायन
83. सर्दी में हितकर–दूध, घी, टमाटर और शरीर का श्रम
84. कमरों के लिए जरूरी–हवा और धूप
85. असिंचित क्षेत्र के पौधे–आंवला, केला, पपीता और बिल्व आदि

86. सबसे सस्ता पोषक पदार्थ–भूने हुए चने
87. ठंड और कफ का वर्धक–मीठा
88. अदृश्य भय का निवारक–कपूर जलाना
89. अदृश्य भयोत्पादक–खराब शनि, मंगल और राहु
90. चिकित्सा का आधार–वातादि दोषों को सन्तुलित बनाना
91. कैंसर में उपयोगी–आरोग्यवर्धनी वटी
92. काली मिर्च का उपयोग–गले की खराश, कफ और वायरल इन्फेक्शन
93. गुड़ का उपयोग–खून की कमी, दिल के रोग और गैस में अदरक के उत्पादक जिले–सिरमौर, सोलन, शिमला, बिलासपुर, हमीरपुर, मण्डी और कांगड़ा
94. मधुमेह में लाभप्रद–लौंग और दालचीनी
95. फैट बर्नर–शहद और इलायची
96. गिलोय या गुलजे–अमृत से पैदा, प्रधान औषधि, त्रिदोषशामक, सदाबहार हरी, यौवनदायक, बुखारहर, वातरोगों में घी से, कफरोगों में शहद से।
97. हृदयरोग शामक–अर्थध्यानपूर्वक आदित्यहृदयस्तोत्र का नित्यपाठ
98. नेत्ररोग शामक–अर्थध्यानपूर्वक नेत्रोपनिषत् का नित्यपाठ
99. त्वचारोग शामक–सायं शिवरक्षा कवच का नित्यपाठ
100. हमारे शरीर के घटक–हवा, पानी, आग, आसमान और राम
101. सर्वरोग या त्रिदोष शामक–बाथू का साग

''पीपल''

कलश पूजन में पीपल के पत्ते का विशेष महत्व है। यह पांच पवित्र पत्तों में से एक है। इससे कलश की शोभा बढ़ाई जाती है जो कि संसार सागर या ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। यह रक्तपित्त या अतिसार का शामक है। चैत्रमास में पीपल के पत्ते झड़ते हैं। यह गर्मी व वर्षा के समय फलदेता है। इस में समस्त तीर्थों का वास है। पीपल की प्रतिष्ठा करने वाले को भगवान् का आशीर्वाद मिलता है। इसके गिर्द चबूतरा बनाने से पुण्य का लाभ होता है। इसकी शनिवार को पूजा करने से शनिदोष शांत हो जाता है।

इसकी समिधा केवल यज्ञ में प्रयुक्त होती है। वृक्षराज पीपल अपने चारों ओर का वातावरण शुद्ध रखते हैं। यह प्राणवायु या ऑक्सीजन का खजाना है। यह तपेदिक, दमा और कुष्ठ रोगों का निवारक भी है। इसकी श्री विष्णवे नमः मंत्र के साथ प्रदक्षिणा ऐश्वर्यवान् पति की प्राप्ति करवाती है। इसकी शाखा काटना ब्रह्महत्या के समान है। इसके ऊपर प्रेतात्मा नहीं आती। पिप्पलादमुनि ने इसको आश्रय बनाकर अपना जीवन सार्थक किया था। इसके फल का चूर्ण गर्भस्थापना में सहायक है। इसका दूध विषमोचक है। खुजली आदि रोगों में इसके पत्तों के क्वाथ के स्नान से लाभ होता है।

''तुलसी''

तुलसी मुख्य रूप से श्वास रोग दूर करती है। इससे तुलस्यादि वटी औषधि बनती है। यह विष व विषाणुनाशक है। कफ–वात शामक है। दूध के साथ इसके बीज मूत्रल हैं। तुलसी के समीप आसमानी बिजली नहीं गिरती।

''सोलन की जानी पहचानी वनौषधियां''

1.	अतीस (शिशुरोगहर)	2.	अपामार्ग	3.	अमरूद
4.	अर्क (आक)	5.	अलसी	6.	असगंध
7.	आमलक	8.	आम्र	9.	ईसबगोल
10.	इन्द्रायण	11.	एरण्ड (इरण)	12.	कर्पूर
13.	कर्कट श्रृंगी	14.	कांचनार (करयाल)	15.	कुटज
16.	केसर	17.	खर्जूर	18.	खदिर
19.	गुग्गुल	20.	गिलोय (गुलजे)	21.	गुलाब
22.	चंदन	23.	चित्रक (चीचा)	24.	जीरक (जीरा)
25.	तुलसी	26.	दाडिम	27.	द्राक्षा

28.	दूर्वा	29.	देवदारू	30.	निंबुक
31.	धान्यक (धनिया)	32.	निंब (नीम)	33.	पलाश
34.	निर्गुण्डी (बणा)	35.	प्लांडु (प्याज)	36.	पिप्पल
37.	पुनर्नवा	38.	विभीतक (बहेड़ा)	39.	बिल्व
40.	ब्राह्मी	41.	भंगा (भांग)	42.	मरिच
43.	भृंगराज (भांगरा)	44.	मुलहठी	45.	अजवायन
46.	रसोन (लहसुन)	47.	लवंग	48.	वचा (बछ)
49.	वासा (बैंशटी)	50.	शतावरी	51.	शिरीष
52.	शुण्ठी	53.	सारिवा	54.	हरिद्रा
55.	दारुहरिद्रा(कश्मल)	56.	हरीतकी (हरड़)	57.	हिंगु
58.	अखरोट	59.	अंजीर (फेगड़ा)	60.	आडू
61.	अरबी (गागटी)	62.	आलू	63.	इमली
64.	ईख	65.	उड़द	66.	लीची
67.	ककड़ी	68.	कचूर	69.	कनेर
70.	कपास	71.	करेला	72.	करोंदा
73.	कुल्थी	74.	कुश	75.	केला
76.	कैंथ	77.	कोदों	78.	खरबूजा
79.	खूबकला	80.	गाजर	81.	गेहूं
82.	गेन्दा	83.	गोभी	84.	चकोतरा
85.	चणक	86.	चाय	87.	चावल
88.	चिरोंजी	89.	चीकू	90.	चिलगोजे
91.	चौलाई	92.	जमीकन्द	93.	जामुन
94.	जौ	95.	टमाटर	96.	तरबूज
97.	तिल	98.	थूहर (सोरो)	99.	नारियल
100.	नासपाती	101.	पनीर	102.	पपीता
103.	पालक	104.	पिपरमिन्ट	105.	पिस्ता
106.	पुदीना	107.	बथुआ	108.	बनफशा
109.	बांस	110.	बाजरा	111.	बादाम
112.	बिच्छुबूटी (कूंकी)	113.	बैंगन	114.	भिंडी
115.	भूमि आंवला	116.	भोजपत्र	117.	मक्का
118.	मखाना	119.	मटर	120.	मसूर
121.	मूंग	122.	मूंगफली	123.	मूली

124.	मेथी	125.	मेंहदी	126.	यूकेलिप्टिस
127.	रतनजोत	128.	राई	129.	राजमा
130.	रीठा	131.	रूदन्ती	132.	रूद्राक्ष
133.	लीची	134.	शकरकन्द	135.	शलगम
136.	शहतूत	137.	शीशम	138.	सदाबहार
139.	सरसों	140.	सहदेवी	141.	साबूदाना
142.	सीताफल	143.	सूरजमुखी	144.	सेमल
145.	सोया	146.	सोयाबीन	147.	सौंफ
148.	स्ट्रॉवरी				

विस्तारार्थ पठनीय :-

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (उ.प्र.)
से प्रकाशित वनौषधि 'रत्नाकर'

6

तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर

शरीर को भगवान् के अनुकूल तो बनाना चाहिए परन्तु उसमें आसक्ति या ममता न हो। मैं जड़ प्रकृति है। हूँ चेतन पुरूष है। मैं हूँ, यह जड़ चेतन का सम्बन्ध है। इसी मैं हूँ के अन्दर कर्तापन और भोक्तापान रहता है। हम मैं को मिटा दें तो हूँ की जगह है अपने आप आ जाएगा। है ही सर्वव्यापक सत्ता है। उसमें कर्तापन और भोक्तापन मिट जाता है। हूँ (जीवात्मा) भोगों के प्रति आकर्षित होता है, है (परमात्मा) नहीं। हम हूँ को न मानें, केवल है को स्वीकार करें। अपने अन्दर अकर्तापन और अभोक्तापन का अनुभव होना ही जीवात्मा की मुक्ति है। सर्वव्यापक सत्ता के इलावा सब कल्पना है। वही सत्ता समस्त कल्पनाओं का आधार है।

सर्वव्यापी सत्ता ही हमारा भगवान्, स्वरूप और परमात्मतत्त्व है। वह समस्त शरीरों के बाहर और अन्दर परिपूर्ण है। सूर्य के प्रकाश (नजर) में समस्त शुभ और अशुभ कर्म सम्पन्न होते हैं। कोई संध्योपासना करता है तो कोई पशुबलि देता है। सूर्य को इसका न पुण्य मिलता है न पाप। वह न कर्ता बनता है न भोक्ता। इसी प्रकार परमात्मा समस्त शरीरों को शक्ति तो देता है परन्तु उनके शुभ या अशुभ कर्मों से लिप्त (स्पृष्ट) नहीं होता। परमात्मा को अपने प्रकाशक होने का कोई अभिमान नहीं है, क्योंकि उनमें भोगेच्छा (ममत्व) ही नहीं है तो लिप्त क्यों होंगे। लिप्त हम जैसा भोगेच्छा वाला होता है।

शरीर का उपयोग कुछ न कुछ काम करने में है। स्थूल शरीर से स्थूल काम होते हैं। सूक्ष्म शरीर से चिन्तन-मनन होता

है। कारण शरीर से स्थिरता (एकाग्रता) का लाभ होता है। अगर हम शरीर या प्रकृति से सम्बन्ध तोड़ दें तो उसमें क्रिया तो रहती है पर कर्तापन या भोक्तापन बाकी नहीं रहता। यही हमारा परम लक्ष्य है। सात्विक ज्ञान में भी 'मैं ज्ञानी हूँ' यह संग (अभिमान) बना रहता है।

हमारी परम्परा में शरीर को भी भगवद्रूप माना गया है। ब्रह्म या परमात्मा द्वारा रचा गया यह शरीर उसी की कार्य साधना के लिए बना है। ताकि उसका प्रयोजन सही प्रकार से सिद्ध हो, इसके लिए प्राकृतिक जड़ी-बूटियों से शरीर की रक्षा के उपाय बनाए गए हैं। वास्तव में यह शरीर भगवान् का मन्दिर है और उसके अन्दर प्रतिष्ठित चैतन्य मूर्ति मानवमात्र के लिए आराध्य है। सम्मानित प्रकृति ही हमें परमात्मा तक पहुंचाती है। अपने जीवन को अधिकाधिक स्वस्थ और प्रयोजनपूर्ण बनाने के लिए हमें निम्नोक्त उपायों का अध्ययन और खोज करनी चाहिए।

'यह सब परमात्मा है' ज्ञान में यह संग नहीं रहता। सात्विक ज्ञान में हमें अपनी इस विशेषता का ज्ञान रहता है लेकिन परमात्मज्ञान में नहीं रहता।

तीनों गुणों में से कोई भी एक बढ़ा हुआ गुण व्यक्ति पर विजय पा लेता है, उसे बान्ध देता है या अपना बना लेता है। उसकी प्रधानता हो जाती है और दूसरे दो गुण गौण हो जाते हैं। प्रकृति या संसार में निरंतर यही तारतम्य चलता और बदलता रहता है। गुणों का यही स्वभाव है। संसार इन्हीं पर चलता है। तीन गुणों की आपसी उठा पटक का नाम ही दुनिया है। जो इनके प्रभाव से मुक्त हो जाता है, वही स्वतन्त्र और परम आनन्दित है।

हमारे अन्तःकरण में वृत्तियां (रुझान) बदलती रहती हैं पर हमारा जीवात्मा उनसे निर्लेप (अस्पृष्ट) रहता है। वृत्तियां तो आने और जाने वाली हैं पर आत्मा स्वयं (चेतना) निरंतर बना रहने वाला

है। यह हम सभी अनुभव करते हैं। वृत्तियों का सम्बन्ध तो अचेतन प्रकृति (मन) के साथ है लेकिन स्वयं का सम्बन्ध केवल चेतन परमात्मा के साथ है। अगर हम अपने अहंकार को मिटाना चाहें तो करना को होने में और होना को है में बदलना पड़ेगा। जिसके अन्तःकरण में केवल कर्म और पदार्थ का महत्व है-ऐसा संसारी आदमी अपने को कर्ता मानता है। कर्ता को भोक्ता या लिप्त बनना ही पड़ता है। क्योंकि विना फल दिए कोई क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। अर्थात् हर आदमी को अपने शुभाशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

ब्रह्म या परमात्मा समग्र भगवान् का ही एक अंग है। हमें अंगी होना है, अंग नहीं। भगवान् के द्वारा सात्विक, राजस् या तामस् क्रियाएं तो निरंतर होती हैं, पर वे उनसे लिप्त नहीं होते। भगवान् की तरफ चलने का यह सबसे बड़ा फायदा है कि भक्त अपने आप आसानी से गुणातीत हो जाता है। उसको भगवान् के समग्र रूप का भी ज्ञान हो जाता है और प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। भगवान् का केवल एकांगी ज्ञान ही बन्धन कारक है।

भगवान कृष्ण के अनुसार धर्म हमें आपस में जोड़ता है तो अधर्म तोड़ता है। राजनीति से धर्मशास्त्र बलवान् होता है। दुर्योधन का आचरण अन्यायपूर्ण था। माता कुन्ती ने तभी तो अनुभव किया था कि अब क्षत्रियधर्म की परीक्षा की घड़ी आ गई है। कृष्ण स्वयं युद्ध में नहीं बल्कि लोककल्याण में प्रवृत्त हुए। केवल इंद्रियों के भोग भोगना आसुरी प्रवृत्ति है। असुर सांसारिक सुख पाने हेतु युद्ध करते हैं। सन्मार्गी लोककल्याणार्थ युद्ध में लगते हैं। केवल उद्देश्य का अन्तर है। युद्ध स्वार्थ हेतु भी होता है और सर्वजनहिताय भी। युद्ध बुरा नहीं युद्ध का लक्ष्य बुरा हो सकता है।

मनुष्य का उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। सदुदेद्श्यार्थ युद्ध

से भी भगवान् प्राप्त होते हैं। अहंता का परिवर्तन करना है। इंद्रियों द्वारा लुभाया गया मन बुद्धि का लोप कर देता है। लोभ या आसक्ति एक नशा है जो बुद्धि को सुला देता हे। सुप्त या लुप्त बुद्धिवाले का विनाश निश्चित है। सकाम भाव या स्वार्थ वश किए गए काम से निषिद्ध कर्म होने की सम्भावना बनी रहती है।

भगवत्प्राप्ति हेतु स्त्री का उपनयन संस्कार केवल विवाह है। पति ही उसका गुरू है, मंत्रदाता है। उसका वेदाध्ययन पति के कर्त्तव्य में सहयोग देना है। परिवार की सेवा उसका यज्ञ है। स्वाभाविक काम सबसे उत्तम है। किसी भी उपाय से अपने मन को भगवान् कृष्ण में लगाना हमारा धर्म है। किसी सांसारिक वस्तु की इच्छा करना ही काम है। अगर हम अपनी कामना भगवान् को अर्पित कर दें तो वह भगवान् की इच्छा बन जाती है। वह पूरी भी हो जाती है। अपनी निजी कामना के पूरा होने में सदा संदेह बना रहता है। कामना तीन गुणोंवाली है। नाशवान् है। भगवदिच्छा तीन गुणों से परे है। सनातन और अमृत है। अर्जुन ने निःशस्त्र या त्रिगुणातीत भगवान् का चुनाव किया था, सफल भी हुआ।

एक परमात्मा ने अपने मनोरंजनार्थ अपने दो भाग किए और भक्तों से खेलने के लिए साकार रूप हो गए। ऐसे खेल खेलने लगे, जिसको देख सुनकर भक्त उनकी ओर प्रवृत्त हो जाएं। अपने भक्तों की ओर दौड़ भागते हैं। जन चाले इक पांवड़ो, हरि चालै सौं कोस। ब्रह्म को जानने वाला परमात्मा की तरह ही परोपकारी और सत्त्वगुण प्रधान हो जाता है। ब्राह्मण या श्रेष्ठ हो जाता है। भक्त कभी आदर चाहता नहीं, देता है। संसार की वस्तुओं और जीवों की रचना सबके परस्पर काम आने के लिए हुई है। भगवान् का भक्त संसार को पवित्र बनाता है। उसको गोपियों की तरह सभी रंगों (कणों) में श्याम ही नजर आते हैं।

शुभकर्म भी सोने की बेड़ियां हैं। शुभ-अशुभ कर्म दोनों के बन्धनों से बचना है, अहंकार से बचना है। भगवान् स्वयं हमें अपना दास बनाएंगे।

एकमात्र भगवान् से सम्पूर्ण संसार में चेतनता है। संसार में जो भी शक्तियुक्त पदार्थ नजर आते हैं वे सब उनके तेज से ही परिपूर्ण हैं। समस्त क्रियाएं उन्हीं की इच्छा से होती है। संसार भगवान् का ही स्वरूप है। मनुष्य जब स्वार्थ और कामनाओं को छोड़कर निष्काम ईश्वर की शरण में जाता है तो उसको भी वही निष्कामता रूप ईश्वरीय आनन्द प्राप्त हो जाता है। भगवान् की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम साधना निःस्वार्थ और विना कर्मफल की इच्छा के शास्त्रोक्त काम करना होता है। भगवान् की साकार रूप (मूर्ति या चित्र) की उपासना सबसे सरल बतायी गयी है। अपने अपने वर्ण (व्यवसाय) और आश्रम (मनोभूमि) के अनुसार स्वकर्म भगवान को सौंपने से मुक्ति (समता) सुलभ हो जाती है। अवश्यम्भावी मृत्यु (जीवनान्तर) के लिए शोक करना व्यर्थ है। रजोगुणप्रधान क्षत्रिय वर्ण के लिए धर्मसंगत युद्ध करना ही कल्याणकारी होता है। अपनी निजी इच्छा से बचना चाहिए। यह ज्ञानियों के ज्ञान को भी ढक देती है। आत्मकल्याण या भगवान् (विश्वकल्याण) के लिए किया जाने वाला कर्म परम आनन्दायक बताया गया है। भक्तिमार्ग (कर्मार्पण) से सभी लोगों को भगवान् का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भक्तिमार्ग को ज्ञान-विज्ञान का मार्ग, राजमार्ग अथवा विद्याओं का राजा भी बताया गया है। ब्रह्मा के दिनारम्भ में सृष्टि की रचना और रात्रि में प्रलय होती है। ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु में महाप्रलय होता है। अत्यन्त पापी व्यक्ति भी भगवान् की शरण में जाने पर वह जन्म-मरण के भय से मुक्त हो जाता है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि तू मुझको याद करते हुए युद्ध (कर्म)

कर। हम भी भगवान् को याद करते हुए अपना काम करें। भगवान् की शरण लेकर अपना काम करें। हम अपना काम भगवान् की बड़ी ख़ुशी के लिए करते रहें, अपनी छोटी ख़ुशी के लिए नहीं। भगवान् का काम भगवान् की इच्छा और आज्ञा से हो रहा है। हम भावना रखें कि भगवान् हम में आकर अपना काम कर रहे हैं। सवेरे की उपासना में अगर अपना दिन और शरीर ही भगवान् को सौंप दें तो सारे दिन के कामों में उन्हीं की मर्जी चलती है। जिस तरह गुरू बच्चे को हाथ से अक्षर लिखना सिखाते हैं, उसी तरह भगवान् हमारा हाथ (बुद्धि) पकड़कर हमें काम सिखातें हैं। हम अपने कामों की बागडोर भगवान् के हाथों में सम्भाल दें। सभी बुराइयों से छुट्कारा पाने का उपाय है, भगवान् की शरण में रहकर उनके लिए काम करना। अपनी मेहनत की कमाई को हम भगवान् का दिया हुआ अमृतरूप प्रसाद ग्रहण करें।

कोशिश करने पर भी परिणाम हमारे लिए उल्टे हो जाएं तो समझना चाहिए कि यही ईश्वर की ओर से सबकी भलाई की इच्छा है, उसका हम सहर्ष स्वागत करें। हमें अपने सभी कामों में भगवान् की इच्छा के दर्शन करने चाहिए। इस प्रकार की भावना से हमारे लिए विष भी अमृत हो जाता है। इसी दर्शन से मीरा के लिए राणा का दिया हुआ विष भी अमृत बन गया था। भगवान् की इच्छा के विना पेड़ का पत्ता भी नहीं हिल सकता। फिर हम सब गायत्रीमन्त्रार्थ के अनुसार उनकी प्रेरणा क्यों न लें। भगवान् की इच्छा के स्वागत में ही हम सबकी भलाई होती है। भगवान् राम ने कैकेयी के व्यंग्य पर कहा था–माँ, मुझे वन में जाने पर मुनियों के दर्शनों का सौभाग्य ही मिलेगा। अयोध्या वापिस लौट ने पर उन्होंने सबसे पहले कैकेयी (प्रतिकूल) का ही आदर किया था। भगवाना रे दीते दे तो शींग बि सौणे ओ। भगवान् के चलाए कोड़े से भी दुनिया का भला होता है। हमें कठोर व्यवहार करने

वाले के साथ भी नम्रता से ही पेश आना चाहिए। किसी भी जीव पर हम क्रोध करेंगे तो वह क्रोध भगवान् पर ही होगा। हम विना कारण सब से प्रेम करें। किसी भी जीव से किया गया प्रेम भगवान् से ही प्रेम होता है। भगवान् का हर विधान जीव के कल्याण के लिए होता है–यह समझना ही सच्ची भक्ति है। हमारी सफलता या असफलता वास्तव में भगवान् की सफलता ही होती है।

दूसरों का सुख चाहना चेतनता है जबकि केवल अपना सुख चाहना जड़ता है। चेतनता की प्रधानता से आदमी के पास दैवी सम्पत्ति और जड़ता की प्रधानता से आसुरी सम्पत्ति आती है। अभिमान आसुरी सम्पत्ति का मूल है। अभिमान से हम अपने अन्दर विशेषता देखते हैं। यही आसुरी सम्पत्ति है। इससे बन्धन होता है और हम संसार चक्र में फंसते जाते हैं। दैवी सम्पत्ति में भी अभिमान आ जाए तो वह भी आसुरी सम्पत्ति हो जाती है। जब जब देवताओं के राजा इन्द्र को अभिमान हुआ तो उसको तोड़ने के लिए भी भगवान् को प्रयास करने पड़े–ऐसा पुराण बताते हैं। आसुरी सम्पत्ति वाले मनुष्य केवल अपना सुख और स्वार्थ देखते हैं और उसके लिए प्रयत्न करते रहते हैं। असुरों के सींग नहीं होते। परोपकार करने में देवत्व लेकिन परापकार करने में असुरता है।

काम और क्रोध असुरों का स्वभाव बन जाता है। वे क्रोध से दुनिया को वश मे करना चाहते हैं। लेकिन मजबूर और लाचार होकर कौन कब तक उनके वश में रहेगा। मौका पाते ही वह भी बदला लेगा। क्रोध का फल कभी भला नहीं हो सकता। असुर ख़ुद भी दुःखी और दूसरों को भी दुःखी करते हैं। उनको संसार भर में कोई भी अच्छा आदमी नजर नहीं आता। ऊंचे लोकों अथवा नीचे लोकों (अवस्थाओं) को प्राप्त करने में हमारे कर्म या पदार्थ कारण नहीं हैं बल्कि उसके पीछे का भाव कारण है। जैसा भाव (सोच) होता है वैसी ही उसके क्रिया और फल होते हैं।

जो मनुष्य विश्वनियन्त्रक भगवान् को नहीं मानते हुए अहंकार वश उनका खण्डन करते हैं, उनको वे आसुरी (पराधीन) योनियों में गिराते हैं ताकि इन योनियों में वे अपने पापों का फल भोग कर पुनः मनुष्ययोनि या कड़वे फल भोगने के बाद मीठा फल पा सकें है। किया हुआ पाप विना फल दिए तो रहता नहीं। क्रिया की अवश्य प्रतिक्रिया होती है। अपने अपराधों का फल भोगकर ही जीवात्मा का निर्मलीकरण होता है। इस प्रकार की योनियों में उनको जन्म देकर भगवान् उन का हित ही करते हैं, ताकि वे निर्मल होकर फिर से मनुष्य योनि में आएं और अपना कल्याण स्वयं करने में समर्थ हो सकें। अपना कल्याण केवल मनुष्य द्वारा सम्भव है। कल्याण परोपकार से होता है। परोपकार मानव शरीर से होता है। इस मामले में भगवान् बड़े दयालु हैं। वे न केवल शुभकर्मियों को अपना कल्याण करने का अवसर देते रहते हैं बल्कि अशुभकर्मियों को भी अपने पापों को भोगने का अवसर प्रदान करते रहते हैं। इसी कारण उनका विधान हम सबके अनुकूल होता है। इस तरह वे सदा तटस्थ रहकर जीवमात्र को परोपकार द्वारा अपना कल्याण स्वयं करने का अवसर प्रदान करते रहते हैं। ज्योतिषशास्त्रानुसार यह कार्य वे शनि देवता के माध्यम से करते हैं। शनि महाराज ब्रह्माण्ड के जज हैं। इस दृष्टि से भगवान् शनि न्याय के व्यवस्थापक हैं।

भोगों की इच्छा से हमारे अन्दर काम या इच्छा पैदा होती है। वस्तुएं संग्रह करने की इच्छा से लोभ पैदा होता है। जब हमारे काम या लोभ में बाधा पड़ती है तो क्रोध पैदा होता है। काम, क्रोध और लोभ तीनों ही आसुरी सम्पत्ति के मूल हैं। समस्त अपराध और विकार इन तीनों से ही पैदा होते हैं। हम अपनी चेतना को सदैव इन तीनों से अलग आजाद रखें। इसी में हमारा कल्याण है।

अगर हमारे पास अपने कल्याण का उद्देश्य होगा तो हमें

अपने कर्त्तव्य का ज्ञान भी खुद हो जाएगा क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। परोपकार से उपकृत व्यक्ति भी परोपकारार्थ प्रेरित होता है। इतिहास में आई अच्छी बातें हमारा मार्गदर्शन तो कर सकती हैं लेकिन सत्य के निर्णय के लिए हमें शास्त्रों के विधि–निषेध ा का सहारा लेना ही पड़ेगा। कारण कि इतिहास से विधि बलवान् है और विधि से निषेध बलवान् है। अतः निषिद्ध वस्तु और कर्म सदा ही वर्जित हैं।

दूसरों के लिए हित का काम करना यज्ञ कहलाता है। परोपकार ही यज्ञ है। केवल स्वार्थ के लिए यज्ञ करना असुरों का स्वभाव है। असुर मारने के लिए यज्ञ करते हैं जबकि देवता जिलाने के लिए। शास्त्रों के अनुसार कलियुग में शुभकर्मों को विधिपूर्वक करना कठिन है। इसके लिए मनुस्मृति कहती है कि ''दानमेकं कलौ युगे'' अर्थात् कलियुग में दान करने से ही मनुष्य का कल्याण होता है। मुक्ति (आनन्द) चाहने वाले निष्काम भाव से दान करते हैं, जबकि भक्ति को चाहने वाले केवल भगवान् के लिए दान करते हैं। मुक्ति में स्वार्थ होता है, भक्ति में परमार्थ। सच्ची भक्ति सबकी मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने में निहित है।

शास्त्रों ने हमारे स्वभाव के आधार पर हमारे लिए कर्म निश्चित किए हैं। नियत (स्वाभाविक) कर्मों का त्याग करने से ही समाज में अव्यवस्था फैलती है। रूपए, सुख और आराम के साथ नियत कर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। सांसारिक भोगेच्छा की पूर्ति के लिए नियत कर्म का त्याग करना तामस् है। तामस् गुण के कारण नीच लोकों की प्राप्ति होना स्वाभाविक है। तामस् बुद्धि के कारण आजकल धर्म (मानवता) के विरूद्ध काम को धर्म निरपेक्षता समझा जाता है। धर्मनिपेक्षता को स्वार्थपूर्ति का हथियार बना लिया गया है। तामसी बुद्धि का फल विनाश होता है। काम के परिणाम को न देखना पशुता है। विवेकी मनुष्य परिणाम को देखते हुए काम

का आरम्भ करता है। ऐसा मनुष्य भोगों में आसक्ति भी नहीं रखता। काम के केवल आरम्भ को देखना भोग है, जबकि परिणाम को देखना योग। भोग संसार की ओर ले जाता है और योग भगवान् (जगत्कल्याण) की ओर। जगत्कल्याण में ही आत्मकल्याण निहित है। संसार में अस्थायी सुख मिलता है, जबकि भगवान् में स्थायी सुख। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए न अधर्म को और न धर्म को हथियार बनाना चाहिए।

तामस् आदमी में मोह (आसक्ति) रहता है जो विवेक के लिए बाधक होता है। तामसी वृत्ति (मन के आवरण) विवेक को जागने नहीं देती। मोह के कारण ऐसे मनुष्य का विवेक लुप्त हो जाता है, जिससे उसको कार्य का आरम्भ या अन्त नजर ही नहीं आता।

किसी भी कर्म के संस्कार निरन्तर हमारे अन्तःकरण में पड़ते जाते हैं। संस्कारों से स्वभाव बनता है। पूर्वजन्म की गुणवृत्तियों के तारतम्य के अनुसार चार वर्णो का विभाग किया गया है। वर्ण परम्परा शुद्ध हो तो वर्णानुसार गुण स्वाभाविक होते हैं। वर्णपरम्परा में कर्मसंकरतावश वर्णसंकरता आने से वर्णों के स्वाभाविक गुणों में कमी आ जाती है। जन्म से स्वभाव बनता है। संग, स्वाध्याय और अभ्यासादि से व्यक्ति का स्वभाव बदल जाता है। निष्ठा से किया गया वर्ण कर्म हमें स्वतन्त्र कर देता है।

गुणों और कर्मों के अनुसार मनुष्य का जन्म होता है। जाति (व्यवसाय) जन्म से मानी जाती है। कर्मों का परिणाम वर्ण है। कोयल की वाणी अपनाकर कौआ कोयल नहीं बन सकता। भोजन, विवाहादि लोकव्यवहार में जाति की प्रधानता मानी जाती है, लेकिन भगवान् की प्राप्ति में व्यक्ति के भाव और विवेक की प्रधानता का महत्व है। माँ की गोद में सभी बालक समान रूप से जाने के अधिकारी होते हैं। जातीय स्वाभाविक कार्यो से उदरपूर्ति और भगवत् प्राप्ति दोनों सम्भव हैं। भगवान् के ही अंश होने से

सभी जीव भगवान् को पाने के भी समान अधिकारी है। भगवान् की भक्ति के कारण विदुर, निषादराज गुह, कबीर, रैदास और सदन कसाई आदि अनेक निम्न जाति के मनुष्य श्रेष्ठ बने हैं, वर्ण या जाति आदि के कारण नहीं। ब्राह्मण या शूद्र के शरीरों में भले ही लोकव्यवहार में भेद हो लेकिन शरीर में कोई अन्तर नहीं होता। भगवान् की प्राप्ति शरीर के साथ सम्बन्ध विच्छेद का अनुभव करने से ही होती है। श्री कृष्ण के अनुसार संसार के सभी वर्गों के व्यक्तियों को श्रेष्ठ बनने का बराबर का अधिकार है। श्रेष्ठता की निशानी चेतना की स्वतन्त्रता है।

अगर कोई आदमी अपने को वकील, अध्यापक और नौकर आदि मानता है और अपना काम निष्ठा के साथ निःस्वार्थ भाव से करता है तो वही उसका स्वकर्म है। स्वार्थ या कामना ही आसक्ति है। किसी भी मनुष्य को अपनी जाति से न ऊंचापन मानना चाहिए और न नीचापन। हर मनुष्य को एक मशीन के पुर्जे की तरह अपने स्वाभाविक काम में लगे रहना चाहिए, ताकि संसार रूप मशीन सही रूप से चलती रहे।

किसी भी वर्ण का आदमी दैवी या आसुरी सम्पत्ति वाला हो सकता है। अगर एक ब्राह्मण को भी अपनी जाति पर अभिमान हो जाए या नीच काम करे तो वह आसुरी सम्पत्ति वाला हो जाएगा और उसकी साधना का स्तर गिर जाएगा, नीच हो जाएगा।

श्रीमद्भागवत् पुराण में संसार (पृ.) को भगवान् का पहला अवतार बताया गया है। संसार भगवान् की पहली मूर्ति है। हमको हर मूर्ति की तरह संसार रूप भगवान् की पूजा (आदर) करनी चाहिए। भजन का गायक श्रोता का आदर करे और श्रोता भजनगायक का आदर करे। इसी तरह गुरू शिष्य का और शिष्य गुरू का करे। आदर भी एक प्रकार का पूजन है। हर काम में हमारी नजर भगवान् पर होनी चाहिए। ऋषि–मुनि क्षत्रिय राम को

प्रणाम नहीं करते थे बल्कि भगवान् राम को करते थे। ग्राहक-खरीददार एक दूसरे में भगवान् को देखें। हम सभी के कर्मों का केन्द्र केवल भगवान् है।

इस संसार में सब कुछ भगवान् का है और भगवान् के लिए है। हम भगवान् सूर्य को दीपक उन्हीं का रूप मानकर दिखाते हैं। उनकी वस्तु उन्हीं को सौंपी जाती है। भगवान् का पूजन संसाररूप में करने से वह संसार भी भगवान् हो जाता है। देवता बीजेश्वर के पास माथा टेकना सर्वोपकारी भगवान् को माथा टेकना है, राजा के पास नहीं। भगवान् के रूप में किसी भी जीव की सेवा भगवान् की सेवा हो जाती है। किसी भी वस्तु का अनादर भगवान् का अनादर हो जाता है। सबका आदर भगवान् का आदर है।

भक्त को अपना कल्याण कभी खुद नहीं करना पड़ता, क्योंकि वह अपनी शक्ति और योग्यता का सहारा न लेकर केवल भगवान् का सहारा लेता है। परिश्रम अवश्य जी भर करता है लेकिन सहारा भगवान् का लेता है। अहंकार छूटने लगता है। समय आने पर भगवत्कृपा उसका अपने आप कल्याण कर देती है।

भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू मेरी आज्ञा नहीं मानेगा तो तेरा अहंकार तुझे तेरे कर्त्तव्य से बांध देगा। तू भगवान् का नहीं केवल अपना हो जाएगा। अगर मेरी या भगवान् की आज्ञा मानेगा तो तेरा कर्त्तव्य तेरे लिए कल्याणकारी (आनन्ददायक और सर्वोपकारी) हो जाएगा। भगवान् की शरण लेने से ही तेरा कल्याण हो जाएगा। अपने शरीर के साथ मैं और मेरेपन का सम्बन्ध न रहने से ईश्वर की माया (गुण) हमें संचालित नहीं कर सकती। जबतक मनुष्य ईश्वर की शरण नहीं लेता, तब तक गुणरस्सी से बान्धने वाली प्रकृति ही उसे संचालित करती रहती है। अगर हम रस्सी से बन्धे हों तो हमारा क्या हाल होगा, यह हम बखूबी जान सकते हैं।

भगवान् अपने आपको अपने भक्त का मित्र बताते हैं। इष्टः असि अर्थात् तुम मेरे मित्र हो। वे सबको अपना मित्र बनाते हैं। अपने बराबर बड़ा बनाते हैं, छोटा या शिष्य नहीं बनाते। दूसरों को छोटा बनाना अपना छोटापन ही होता है। बड़ा बनाने में भगवान् की सेवा है। अपना कर्त्तव्य मन लगाकर करना और उसे भगवान् को सौंपना सबसे बड़ी भक्ति है। तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर, यही भगवान् की शरगणागति है। जिससे अर्जुन की तरह ही मनुष्यमात्र का भी कल्याण हो जाता है।

संत नामदेव ने प्रेत में भी भगवान् को माना तो उसमें भी भगवान् प्रकट हो गए। किसी को कुछ भी दिया जाए तो उसे भगवान् ही ग्रहण करते हैं। किसी भी देवता को किया गया प्रणाम उसी एक परमशक्ति को मिलता है। हम भगवान् विष्णु के स्मरणमात्र से पवित्र हो जाते हैं। प्राणी रूप भगवान की सेवा हेतु समर्पित आदमी भगवान् को विशेष प्रिय होता है। जहां भगवान् का नाम नहीं लिया जाता, वहां विध्वंसक असुरों का प्रभाव होता है। भोजन-वस्त्रादि हर चीज का ग्रहण भगवान् का स्मरण करके करना चाहिए।

मेरे और तेरे के भाव में माया (गुण) बसती है। संसार की सभी चीजों में भगवान् की शक्ति के दर्शन से माया नष्ट हो जाती है। इस समय हम ब्रह्मा की आयु के इकावनवें वर्ष में जी रहे हैं तथा सातवें मनु वैवस्वत का राज्य चल रहा है। देवता भी भगवान् को पाने के लिए मनुष्य का जन्म लेने को तरसते हैं। जो अपने प्राणों का मोह करते हैं, वे असुर कहलाते हैं। वे केवल सांसारिक भोगों को भोगने की इच्छा रखते हैं। महान् पुरुष दधीचि ऋषि की तरह अपने प्राणों का भी दान कर देते हैं। भक्त को मेहनत का जो कुछ भगवान् दे रहा है, उसी में वह खुश रहता है। भक्ति सबसे बड़ी तपस्या है। भगवान् की कथा का श्रवण भक्तों के अपराधों का

नाश कर देता है। केवल धन आदि के प्रति लालसा मनुष्य के अभिमान को बढ़ाया करती है।

जिस परमात्मा को वेद जानना चाहते हैं, उसको न जानना केवल वेद के भार को ढोना है। वही भगवान् हमारे अन्न को पचाते हैं। अध्ययन से भी भगवान् को जाना जा सकता है। उसी भगवान् के प्रकाश से सब कुछ नजर आता है। हमारी वैदिक भक्तिसाधना वैज्ञानिक और कल्याणकारी है। दोष काम करने से नहीं लगता, बल्कि रजोगुण से उत्पन्न राग या आसक्ति से लगता है। जिसके जीवन का लक्ष्य भगवान् को पाना नहीं होता, वह जीवात्मा मलिन हो जाता है। एक मात्र भगवान् ही जनपालक है। वे अपने पृथ्वी आदि समस्त कार्यों में समाए रहते हैं। वे हाथ और पांव के न होने पर भी भावरूप में क्रियाशील हैं। मैं, तू, यह और वह उसी से प्रकाशित होते हैं। भगवान् भक्तिप्रिय है। भगवान् की यह प्रतिज्ञा है कि वे अपने भक्तों को समस्त भयों से मुक्त कर देते हैं।

भगवान् की सेवा मुक्ति से भी सौगुणा श्रेष्ठ है। भगवान् प्रेम के रस का आस्वादन करने के लिए एक से अनेक हो जाया करते हैं। शूद्रों (शिल्पियों) के लिए विना किसी ईर्ष्या के त्रिवर्ण (संसार) की सेवा (सहयोग) ही भगवान् की सेवा है। जो भगवान् के भक्त नहीं हैं वे ब्राह्मणादि भी शूद्र जैसे ही हैं। कर्म का वर्ण भगवत्सेवा का माध्यम मात्र है। उपासना हमारा सम्बन्ध भगवान् से जोड़ती है। सत्वादि तीनों गुण भगवान् से प्रकाशित होते हैं। जो हमारे लिए हितकर होता है, उसे भगवान् हमें जरूर देते हैं। शास्त्रानुसार हमें स्वधर्मानुसार कार्य करने का आदेश हैं। हमारी वासना या आंतरिक मलिनता को केवल भगवान् की भक्ति ही दूर करती है। प्रियवाक्य बोलकर हम सभी जीवों को प्रसन्न कर सकते हैं। परमेश्वर हम सब के परम इष्ट हैं, बाकी सब देवता हैं। अपने अपने इष्ट देवताओं में देवतेन्द्र परमात्मा की उपासना ही सर्वोत्तम है।

7

जय सोलन भूमि माता

विद्वानों के अनुसार हम आर्यभूमि में उत्पन्न आर्य लोग हैं। मनु के अनुसार हिमालय से लेकर विंध्याचल तक की भूमि को आर्यावर्त या आर्यों का मूलनिवास बताया गया है। इस जाति ने मानवसभ्यता के विकास में अविस्मरणीय योगदान दिया है।

पश्चिम के इतिहासकार आर्यों को भारतीय मूल का मानने से मना करते हैं। वे सम्भवतः आर्यजाति को प्राचीनकाल की सर्वश्रेष्ठ जाति नहीं मानना चाहते थे। संस्कृत की ॠ धातु से बना आर्य शब्द श्रेष्ठता का बोधक है, जिसके उत्तम, सभ्य, कुलीन, सज्जन, उदार, आदरणीय और मित्र आदि अनेक अर्थ होते हैं। वास्तव में अंग्रेज लोग हमारे अन्दर हीन भावना पैदा करके हमारे ऊपर शासन करना चाहते थे। इसी लिए वे हमारे अपने इतिहास के प्रति हमारे दृष्टिकोण को बदलना चाहते थे। वास्तव में वे हमारी अपनी जन्मभूमि के प्रति हमारे गहरे लगाव को पसन्द नहीं करते थे। उनकी इस सोच से न केवल पश्चिमी इतिहासकार बल्कि हमारे कई भारतीय इतिहासकार भी मुग्ध हुए विना न रहे।

वास्तव में सिन्धु–सरस्वती घाटी की सभ्यता ही आर्यसभ्यता थी और प्राकृतिक या भूगर्भिक कारणों से उस सभ्यता का विध्वंस हुआ। बाद में विस्थापित आर्यों के कुछ समूह ईरान और यूरोप की ओर निकल गए। इसी कारण यहां की भाषा की आंशिक समानता वहां भी बनी रही। संस्कृत संसार की सबसे पुरानी, समृद्ध और वैज्ञानिक भाषा है। इसी कारण वे लोग यहां की मूल भाषा के प्रति आकृष्ट हुआ करते हैं। भागवतादि पुराणों के अनुसार

आर्य और म्लेच्छ दोनों भारतवासी थे। शक, पल्लव और कंबोज आदि उपजातियां म्लेच्छों की ही थी। आर्य अपने निवास क्षेत्र में उनको प्रवेश नहीं करने देते थे। आर्यों की अपेक्षा वे गंदे और बर्बर थे। उस प्रकार के लोगों से दूरी उनकी मजबूरी थी।

हड़प्पा और मोहन जोदड़ो आर्य देश के ही नगर थे। हो सकता है कि आर्यावर्त संसार का पहला देश रहा हो जैसा कि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा भी है– प्रथम प्रभात उदय तव गगने। मनु जी ने भी यही कहा है कि इसी देश के विद्वानों से समस्त संसार के लोगों ने अपने अपने कला–कौशल सीखे। वैज्ञानिक शोधों से भी यह पता चला है कि बीस हजार साल पहले भारतवासी यूरोप और अन्य महाद्वीपों में गए और वहीं बस गए। द्रविड़ आर्यों के समकालीन थे और उन्हीं जैसे सभ्य, विद्याप्रेमी और धार्मिक थे। दोनों के आपस में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। लगभग दस हजार साल ई.पू. तक एक अखिल भारतीय संस्कृतभाषा प्रयोग में आ चुकी थी। यही कारण है कि जय शंकर प्रसाद जी बोल पड़े–हमारी मातृभूमि है यही, कहीं से हम आए थे नहीं।

वैदिक संस्कृति को आर्यों ने विकसित किया। अंग्रेजों ने स्वार्थवश प्रचारित किया कि सिंधुघाटी की सप्तसैंधव सभ्यता वैदिक सभ्यता से भी पुरानी थी। बाहर से आए आर्यों ने उसे ध्वस्त कर दिया और उसी के अवशेषों पर अपनी वैदिक सभ्यता खड़ी करदी। अंग्रेज इतिहासकारों ने हमें बाहर से आई आक्रामक जाति सिद्ध कर दिया। मुस्लिम आक्रांताओं की तरह आक्रामक जाति कभी श्रेष्ठ या आदरणीय नहीं हो सकती। श्रेष्ठ जाति वही हो सकती है, जिसमें बुराई, हिंसा या बर्बरता के प्रति खीज हो। यह खीज आर्यों में थी और उन्होंने इसी के कारण रावण, कन्स या दुर्योधन जैसे अपने हिंसकों को भी ठिकाने लगाया था। भारत अपने स्वधर्म अहिंसा पर सदा कायम रहा है।

आधुनिक अध्ययनों के परिणाम बताते हैं कि हड़प्पा की संस्कृति आर्यों और अनार्यों की मिली जुली संस्कृति थी। अंग्रेजी इतिहास के अनुसार आर्यजन सिंधु या समुद्र से परिचित नहीं थे, क्योंकि वे मध्य एशिया से आए थे। उनको पता होना चाहिए था कि वेदों में सिंधु शब्द का अर्थ केवल नदी ही नहीं सागर भी है। इस आन्तरिक प्रमाण पर उन्होंने गौर नहीं किया और भ्रान्त हो गए।

आर्यों में परस्पर गजब का समन्वय था। गुण–कर्मों के आधार पर वर्ण की व्यवस्था लागू थी। सभी वर्गों के लिए आचार व्यवस्था बनी हुई थी। सबके लिए कर्त्तव्य और अधिकार निर्धारित थे। शूद्र भी समाज (ईश्वर) के महत्वपूर्ण अंग थे। वे भगवान् के पूरक अंग थे। उन्हें कभी अनार्य नहीं माना गया। समाज में जो जिस भूमिका के योग्य था उसको वही भूमिका प्राप्त थी। आर्य शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।

आर्यों और मानव जाति का प्राचीनतम साहित्य वेद केवल भारत में ही प्राप्त है, अतः आर्य बाहर से न आकर भारत के ही निवासी थे। अगर वे बाहर से आए होते तो अपने पुराने स्थान को वेदों में जरूर याद करते, कहीं याद किया तो नहीं है। जहां से वे आए थे, वहां भी कोई यादगार साहित्य छोड़ते, कुछ छोड़ा तो नहीं है। आर्य भाषा संस्कृत के मूलशब्द भारत की सभी भाषाओं में अधिकतया मिलते हैं, यूरोप की भाषाओं में वे बहुत कम हैं। इसका मतलब है, बाहर फैलकर उनकी भाषा विकृत होती गई, परन्तु यहां उतनी विकृत नहीं हुई। हमारी परम्परागत कथा–कहानियों और पूर्वजों की उक्तियों में उनके कहीं बाहर से आने की सूचना मिलती नहीं है। सरस्वती के तटों से आर्य उत्तर–पश्चिम की ओर भी फैले। वैदिक संहिताओं का सप्तसैंधव देश पंजाब में ही बताया जाता है।

बाद में आर्य अपने देश को ब्रह्मावर्त कहने लगे। आज भी धार्मिक कृत्यों और यज्ञों आदि में संकल्प के समय ब्रह्मावर्त या

आर्यावर्त का उच्चारण किया जाता है। इसे मध्यदेश भी बताया गया है। वे पंजाब से ही क्रमशः प्रयाग की ओर फैले थे। भारत से बाहर जाकर ईरान में संस्कृत फारसी के रूप में बदल गई। आर्यभाषा संस्कृत की रक्षा और विकास केवल भारत में ही हुआ। बाहर के देशों में जाकर संस्कृत रूपान्तरित हो गई।

वेदों की ऋचाओं में संकेतित सभ्यता अतीव पुष्ट परिमार्जित लगती है। वह साहित्य की सुविकसित शैली है। वैदिक साहित्य में परम्परा में समाई हुई घटनाएं है। भारत की सुखदायिनी भूमि से आर्यों ने बाहर जाना कदापि पसन्द नहीं किया। आज भी ज्यादा रूझान नहीं है। पश्चिमी इतिहास की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि उसकी दृष्टि में मानवजाति ने जिस तरह हमेशा से एक दूसरे की संस्कृति का विध्वंस किया, भारत ने भी अन्यत्र वैसा ही किया। जबकि यह बात आर्यों पर लागू नहीं होती। भारत के कई इतिहासकारों ने भी पश्चिमी दृष्टिकोण को अपनाया, जो कि सर्वथा भ्रामक है। ऋग्वेदानुसार सप्तसैंधव आर्यों का देश था। सर विलियम जोन्स ने यूनानी, लातिनी और फारसी आदि को संस्कृत से ही विकसित बताया है। आर्य अपनी संस्कृति और सभ्यता से ही विकसित है। आर्य अपनी संस्कृति और सभ्यता के लिए विश्व के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। आर्यो का अपना देश केवल भारत था। कई विद्वानों ने आर्यो को घुमक्कड़ स्वभाव का सिद्ध करके बताया है कि भारत उन्हें इतना पसन्द आया कि वे यहीं के होकर रह गए।

वेदों के आंतरिक प्रमाणों की ओर विदेशियों ने ध्यान ही नहीं दिया। सप्तसिन्धु शब्द का आधार सिन्धु शब्द ही है, जिसका अर्थ नदी होता है। सिन्धु के केवल नदी अर्थ की ओर ही सर्वत्र उनका ध्यान गया। ऋग्वेद संहिता के निर्माण काल तक आर्य पंचनद, कश्मीर, गान्धार और हिमालय में बस चुके थे। अवेस्ता में सप्तसिंधु को प्रसिद्ध कहा गया है। आर्यभूमि के चारों ओर चार

समुद्र थे। सृष्टिकाल में पंजाब और गान्धार में आर्यो का उत्पत्तिस्थान बताया गया है। आर्य अनेक भागों में फैलकर अनेक उपजातियों में बंट गए। सप्तसिन्धु में ही उनका अनार्यो से सामना हुआ और उनका बहिष्कार कर दिया। आगे जाकर अनार्य सभ्य होकर आर्यो से घुलमिल गए। जो आर्यों के अनुकूल चले वे वानर आदि कहलाए लेकिन शत्रुता रखने वाले राक्षस कहलाने लगे। उनके देश में केवल सात नदियों की प्रधानता रही।

सात नदियों वाले समुन्नत प्रदेश का सप्तसैन्धव के लिए सैंधव, सैंधवारण्य और सरस्वती जैसे शब्द बार बार प्रयुक्त हुए हैं। पुराणों के अनुसार गंगा, यमुना, सरस्वती, शतद्रु, परुष्णी (चिनाब) मरुद्वृद्धा (रावी) और आर्जीकिया (व्यास) वेदोक्त सात नदियां हैं। ये शिव की जटा (अरण्य) से निकली गंगा की सात धाराएं हैं। सरस्वती पंजाब की प्राचीन नदी थी। इसकी एक क्षीण धारा कुरुक्षेत्र के पास अब तक बताई जाती है। महाभारत के अनुसार उतथ्य ऋषि के शाप से इसका जल सूख गया। स्कंद पुराण के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि ने भाद्र शुक्ल द्वादशी को इसे द्वारका में उतारा था। वेदों के अनुसार सरस्वती के तट अति पवित्र हैं। एक मान्यता के अनुसार वह लुप्त हो कर भू-गर्भ मार्ग से प्रयाग में गंगा-यमुना संगम में जा मिली। सरस्वती नदियों की माता है। इन्हें ज्ञान की नदी माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में आकर सरस्वती ने वाग्देवी का रूप ले लिया। इसके तटों पर ज्ञानप्राप्ति के कारण यह नदी ज्ञान की प्रतीक बन गई।

एक विश्वस्त शोध के अनुसार मिस्र और यूनान आदि देशों के लोग मोहन जोदड़ों और हड़प्पा में व्यापार के लिए आते थे। ये नगर अभिजात वर्गीय लोगों के केन्द्र थे। सप्तसिन्धु सभ्यता को आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट किए जाने का उल्लेख विश्वसाहित्य में कहीं नहीं मिलता। अन्यसभ्यताओं की तरह अकारण आक्रमण

और हिंसा का प्रयोग आर्यो ने कभी नहीं किया। ये श्रेष्ठता के गुण होते भी नहीं। आर्य मूलतः उदारता और लोकमंगल की भावना के आदर्श माने जाते हैं। वे सभी के लिए सुख की कामना करते हैं-सर्वे भवन्तु सुखिनः। ऋग्वेद के अनुसार सप्तसिन्धु देवभूमि या यागप्रेमियों की भूमि थी। श्रेष्ठ आर्य अश्रेष्ठ काम भला क्यों करते। अतः उन्होंने कोई आक्रमण नहीं किया। उच्च ज्ञान का प्रचार-प्रसार अवश्य किया।

परन्तु यह एक सत्य है कि सैंधव नगरों का विध्वंस अवश्य हुआ था। सम्भवतः उन नगरों को बसाने के लिए पर्यावरण का संकट जरूर पैदा हुआ था। उससे ही उस सभ्यता का विध्वंस हुआ हो सकता है। इस ध्वंस का एक कारण जलप्लावन भी हो सकता है। ऐसे प्रसंग वेद-उपनिषदों में आए हैं। शायद कामायनी महाकाव्य को लिखने की प्रेरणा उसी से मिली हो।

केवल परमात्मा को जानकर ही सांसारिक समस्याओं से छुट्कारा मिल सकता है। इसके लिए हर रोज संध्योपासना की जाती है। उपासना करने से मन शुद्ध होता है और परमात्मा को पाने की योग्यता प्राप्त होती है। सूर्य भगवान् ब्रह्म या परमात्मा की साक्षात् मूर्ति है। उन्हीं की उपासना या निकटता प्राप्त करना संध्योपासना कहलाती है। तेजस् या ज्योति के ध्यान के साथ गायत्री का जप करना इसमें एक विशेष बात है। गायत्री मन्त्र के उपास्य देवता परमात्मा को जानने और अनुभव करने का अधिकार मानवमात्र को है, परन्तु अपने अपने वर्णकर्म के माध्यम से परमात्मा को माँ के रूप में देखने से हमें अपार मातृस्नेह प्राप्त होता है। परमात्मा शक्तिस्वरूप में हमें दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। गायत्री और परमात्मा दोनों एक ही देवता के दो नाम हैं। ये हमारे पापों या अवगुणों का नाश करते हैं। संध्याकर्म से हमारा ब्राह्मणत्व सुप्रतिष्ठित होता है। प्रतिदिन संध्या न करने वाला ब्राह्मण

कर्मभ्रष्ट होकर अपवित्र या अब्राह्मण हो जाता है। शुक्लयजुर्वेदियों के लिए दोपहर की संध्या आवश्यक बताई गई है। तीनों वर्णों के लिए एक ही प्रकार की संध्या बताई गई है। भारत मातृ प्रधान देश है। यहां माँ और परमात्मा का आदर और पूजा होती है। मातृ भ्रूण का अनादर परमात्मा का अनादर और हत्या तो अक्षम्य पाप है। मूलतः सत्वगुण प्रधान ब्राह्मण को तमोगुण से बचना चाहिए, अन्यथा सबका विनाश निश्चित है।

जिन कर्मों के करने से इस लोक में वांछित फल और मृत्यु के बाद सुख मिले उन यज्ञकर्मों को कर्मकाण्ड कहते हैं। यजुर्वेद में अधिकांश रूप में कर्मकाण्ड और उपासना का ही वर्णन है। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों को प्रयोग करने वाला उत्तम माना गया है। 'पूर्वमीमांसा' में केवल सर्वप्रथम आचरणीय कर्मकाण्ड का विवरण है। ज्ञान विषयक मीमांसा 'उत्तर मीमांसा' या वेदान्त में है। उत्सव भी प्रायः कर्मकाण्ड पर आधारित हैं। पूर्वमीमांसा सन्यास का समर्थन नहीं करता।

8

हमारी कर्मकांड और उत्सव साधना

वैदिक कार्यक्षेत्र के दो काण्ड ज्ञान और कर्म हैं। कर्मकाण्ड वैदिकजीवन का व्यवहारशास्त्र है। कर्मकाण्ड की शक्ति से जनमेजय के सर्पयज्ञ में तक्षकनाग सहित इन्द्र के आसन को स्वर्ग से ध ारती पर उतार दिया गया था। पुरोहित मन्त्र द्वारा इन्द्र को ही अग्नि को अर्पण करने लगे तो ब्रह्मा जी ने उन्हें रोका। कर्मकाण्ड को चार भागों में बान्टा गया है। नित्य, नैमित्तिक, पूजा–होम और काम्य। कर्मकाण्ड आत्मशुद्धि का पहला और अन्तिम साधन है। दर्शनों में कर्मकाण्ड मीमांसा महत्त्वपूर्ण है। आत्मशुद्धि होने के बाद भी परप्रेरणार्थ कर्मकाण्ड त्यागा नहीं जा सकता।

सर्वजनसुलभ कर्मकाण्ड का पहला और आधार भाग नित्यकर्म है। व्यावहारिक नियमों का संकलन ही कर्मकाण्ड है। नित्यकर्म का मतलब है प्रतिदिन किए जाने वाले कर्म। जल्दी जागकर हरिस्मरण, दोनों हाथों में देव दर्शन, धरती माता को प्रणाम, बड़ों का आशीर्वाद, छोटों को स्नेह आदि दैनिक प्रमुख कर्म है। इसके बाद नेत्रप्रक्षालन, जलपान, शौच, दन्तधावन, समन्त्र स्नान और संध्यावन्दन किया जाता है। इसमें संकल्प, उपस्थान, गायत्री आवाहन और आचमनादि महत्त्वपूर्ण हैं। सूर्य, गणेश, भगवती, शिव और कृष्ण नित्य पूजनीय देवता हैं। पंचयज्ञ या बलिवैश्वदेव या नित्यहवन अवश्य करना चाहिए।

नित्य के अपराधों से बचने हेतु अतिथि, चींटी, गाय, भूमि और कुत्ते को भोज्यपदार्थ देने चाहिए। स्वयं भोजन भगवान् का प्रसाद मानकर करें। स्त्रियों के लिए पति की आज्ञा से काम करना

जरूरी है। स्त्री की शुद्धि चौथे दिन स्नान से होती है। स्त्री वेदमन्त्रों से पूजा केवल पति के साथ बैठकर करे। वेदाध्ययन में सबका अधिकार तो नहीं परन्तु वेदों के एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्ति में मानवमात्र का अधिकार है।

महामन्त्र गायत्री में स्वरूप भी परमात्मा का है, प्रार्थना भी परमात्मा की और ध्यान भी परमात्मा का है। तीर्थगुरू पुष्करराज में ब्रह्मा जी के मन्दिर में ये ब्रह्मा जी के दाहिने बैठी हैं। ये वाणी (सरस्वती) रूप होकर तीनों लोकों में प्रधान शक्ति हैं। इनका मनन या जय ही गायन है। इनके जप से हमारा जीवन दिव्य हो जाता हैं। समस्त मन्त्र गायत्री के अन्तर्भूत है। समस्त मन्त्र इन्हीं से सिद्ध होते हैं।

गायत्री मन्त्र हमें ब्रह्म (परमात्मा) और उसके द्वारा रचित ब्रह्माण्ड से जोड़ता है, शरीर और ब्रह्मांड को एकाकार करता है। स्व से सः अहम् तक ले जाता है। अहं को वयम् में बदलता है। मैं को हम में बदलता है। सारा ब्रह्माण्ड उसी एक का रूप है। दो का परस्पर विवाद होता है, एक का एक से कदापि नहीं। हम या ब्रह्माण्ड एक ही महाध्वनि से पैदा हुए हैं। हमारी आवाज उसी की आवाज है। हमारे शब्द उसी के शब्द हैं। हमारे काम उसी के काम हैं। हमारी क्रियाशीलता उसी की क्रियाशीलता है।

हमारा शरीर और ब्रह्माण्ड एक ही तत्त्व से बने हैं। दोनों सजातीय हैं। हमारे मन में और ब्रह्माण्ड के मन में एक ही महाविचार कौन्धता है। एक ही महाचेतना हमारे शरीर और ब्रह्माण्ड में काम कर रही है। भगवान् सूर्य अपनी ब्रह्माण्ड व्यापी भर्ग नामक दिव्यशक्ति से संसार की रचना, पालन और संहार करते हैं। वे संहार भी हमारी भलाई के लिए, हमें रास्ते पर लाने के लिए और नवजीवन देने के लिए करते हैं। हम उनकी उस शक्ति का ध्यान करते हैं। जिससे वे हमें लोकमंगलकारी कार्यों में प्रवृत्त

करते हैं। उस रूप में गायत्री माँ के जप का फल अनन्त शक्ति देने वाला हो जाता है।

महामन्त्र गायत्री हमारे जीवन के हर क्षेत्र में सफलता देता है। यह अज्ञान, अंधकार और अभाव को दूर करता है। इससे प्राणशक्ति और दीर्घायु मिलती है। यह यश, आरोग्य और धन देती है। इसकी प्रेरणा जगत् पालक सूर्य से आती है। इसके जयघोष की तरंगें देवशक्ति से टकराती हैं और जयकर्ता के लिए मानसिक प्रेरणाएं लेकर लौटती हैं। इससे हमें भौतिक और आत्मिक लाभ मिलते हैं। देवशक्ति वाले प्रकाश के परमाणु अपासक में विकसित होते जाते हैं। उसकी कल्पनाएं सार्थक होने लगती है। मन्त्रमहार्णव के अनुसार गायत्री की शब्द शक्ति हमेशा ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करती रहती है।

मन्त्र का हर अक्षर शक्ति का बीज है। डा. प्रणव पाण्डे के अनुसार इससे चौबीस शक्तिशाली चक्रों का जागरण होता है। चारों वेदों की तरह गायत्री मन्त्र में भी ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन है। इसी गुरुमन्त्र ने प्राचीन काल में भारत को जगद् गुरु का दर्जा दिलाया था। यह सनातन मन्त्र ब्रह्मा जी को आकाशवाणी से प्राप्त हुआ था। इसी से वे सृष्टि रचना में समर्थ हुए थे। इसी मन्त्र के चार चरणों से चार वेद पैदा हुए। चारों वेद, गायत्री की व्याख्यामात्र हैं। गायत्री मन्त्र का ज्ञाता वेदों का ज्ञाता हो जाता है। गीता वेदों का सार है। वह गायत्री रूप है।

गायत्री मन्त्र परमात्मा का प्रकट ध्वनि रूप है। यह ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना का महा सरोवर है। यह विश्वव्यापी मानव धर्म का सारांश है। यह भगवान् के मुख से निकला सबसे पहला मन्त्र है। इसमें सुख और शान्तिदायक शिक्षा है। यह अपने आप में संसार के लिए एक सम्पूर्ण धर्मशास्त्र है। विश्व की समस्त धार्मिक भावनाएं गायत्रीमाता की शाखाएं हैं। गायत्री का अनुभव परमात्मा

का अनुभव है।

भगवान् सूर्य के श्रेष्ठ तेज से हम अपनी बुद्धि को प्रेरणा देने हेतु याचना करते हैं। भूः, भुवः और स्वः का मतलब है धरती, आकाश और स्वर्गरूप (ब्रह्माण्ड) में परमात्मा को अनुभव करना। हम प्रकाशमय परमात्मा के वरणीय तेज का ध्यान करते हैं।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने और विश्व के अन्दर एकरसता का अनुभव किया था। भूः हमारा संसार, भुवः शरीर और स्वः आत्मा है। ये तीनों भगवान् की सत्ता से भरे हैं। हम अपने आत्मा को उदार बनाकर अपने अन्दर के परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं। अपने इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द लिया जा सकता है। गायत्री जापक के लिए देवता भी सहायक हो जाते हैं। यह सूर्य नारायण का आवाहन मन्त्र है। शास्त्रविद् जानकारों के अनुसार निम्नार्थ के ध्यानपूर्वक गायत्री जप अधिक फलदायक होता है।

ऊँ	–	(हम) ध्वनिरूप परमात्मा
भूः	–	पंचतत्त्वों से बने हमारे शरीर रूप ब्रह्माण्ड
भुवः	–	ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म शरीर, मन या विचार,
स्वः	–	ब्रह्माण्डीय चेतना और
सवितुः	–	ब्रह्माण्ड को रचने वाले
देवस्य	–	सूर्यरूप परमात्मा के
तत्	–	उस
वरेण्यं	–	अज्ञान के नाशक धारण करने योग्य
भर्गः	–	ब्रह्माण्ड व्यापी ऊर्जा का ध्यान (करते हैं)
यः	–	जो
नः	–	हमें
धियः	–	सर्वजीवहितकारी ज्ञान
प्रचोदयात्	–	प्रेरित (प्रदान) करता है।

एकान्त व पवित्र स्थान में संध्या करने से मन पवित्र हो

जाता है। संध्या हमेशा भोजन से पहले की जाती है। संध्या नित्यकर्म होने से इसे हमको हर दिन करना चाहिए। अपवित्र अवस्था में भी मानसिक संध्या की जा सकती है। जनेऊ पड़ने से पहले बालक की मृत्यु होने पर तीन रात तक अशौच या अपवित्रता रहती है। जनेऊ के बाद मृत्यु हो तो दस रात तक अशौच माना जाता है। संध्या के समय कुश का पवित्रक या ताम्बे की अंगूठी पहननी चाहिए।

गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिखा बांधनी चाहिए। वस्त्र के आसन पर बैठकर संध्या की जाती है। जप करते समय अपने अशुद्ध अंगों का स्पर्श वर्जित होता है। रीढ़ सीधी होनी चाहिए। शरीर सीधा और स्थिर रहे। आचमन करने से मन की उत्तेजना शांत होती है। तीन आचमनों से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की तृप्ति होती है। विनियोग पढ़कर जल छोड़ना आवश्यक नहीं होता।

प्राणायाम करने से नस-नाड़ियों के अन्दर की रोगोत्पादक अशुद्धियां बाहर निकल जाती है। मन, प्राण और वीर्य तीनों में से एक को वश में करने से शेष दो स्वयं वश में हो जाते हैं। मन की स्थिरता और वीर्य की स्थिरता (रक्षा) से सांसारिक और पारलौकिक लाभ मिलते हैं।

प्राणायाम में सांस लेते हुए श्यामरंग चतुर्भुज भगवान् विष्णु का नाभिस्थान में ध्यान किया जाता है। सांस रोककर भगवान् की नाभि से प्रकट गौरवर्ण, चतुर्मुख ब्रह्मा जी का हृदय में ध्यान किया जाता है। सांस छोड़ते हुए श्वेतरंग त्रिनेत्र भगवान् महादेव का माथे में ध्यान किया जाता है। यह हमारे जन्म, पालन और विलय का ध्यान है। जन्मादि तीनों के ध्यान में ही सनातन (नित्य) का ध्यान समाया है।

परमात्मा का साक्षात्कार करने में मल, विक्षेप और आवरण

नामक तीन बाधाएं सामने आती हैं। संध्या करने से ये सब नष्ट हो जाती हैं। हम पृथ्वी माता के पुत्र हैं। पृथ्वी सूर्य से प्रकट हुई है। सूर्य स्वयं भगवान के स्वरूप हैं। अर्घ्य और प्रणाम के द्वारा उनकी उपासना की जाती है। उनकी प्रसन्नता से हमारी आंखों को दर्शनशक्ति मिलती है। गायत्री मन्त्र के साथ तीन बार सर झुका कर अर्घ्य देना चाहिए।

भगवान सूर्य के पास उपस्थित होने का नाम उपस्थान है। उनके दरबार में हाजरी दी जाती है। माँ का समन्त्र आवाहन करके उन्हें प्रणाम किया जाता है। गायत्री मन्त्र में परमात्मा की स्तुति है। जप का मतलब है बार-बार स्तुति करना। परमात्मा के प्रसन्न होने से हम जन्म-मरण की बेड़ी से छूट जाते हैं। हमें नित्य शान्ति का लाभ मिलता है। यह केवल सात बार जप करने से भी शरीर को पवित्र करती है। एक सौ आठ बार करने से तो हम संसार सागर से पार हो कर निर्भय हो जाते हैं। हमें फिर से जन्म-मृत्यु का चक्कर रूप दुःख नहीं भोगना पड़ता। केवल गायत्री मन्त्र को ही समर्पित ब्राह्मण भी श्रेष्ठ मनोवृत्ति वाला हो जाता है। वास्तव में मृत्यु हमारे सनातन अमर जीवन की राह के बीच एक मील का पत्थर है। मृत्यु का भय भाग जाने पर बाकी सारे भय खुद भाग जाते हैं।

मानसिक जप का मतलब है मन्त्र के अक्षर, शब्द और अर्थ के चिन्तन पूर्वक जप करना। एक काल की संध्या में कम से कम एक सौ आठ मन्त्र तो जपने ही चाहिए। माला वस्त्र से ढकी हो। विना गिने जप करना आसुरी जप कहा जाता है। रूद्राक्ष, तुलसी और चन्दन की मालाएं श्रेष्ठ मानी गयी हैं। सूर्यनारायण की केवल एक बार प्रदक्षिणा बताई गई है। भगवान् को अर्पण किया गया सत्कर्म ही सांसारिक समस्याओं का निवारण करता है। हमें अहंकार से छुड़ा देता है। परमात्मा रूपा गायत्री का विसर्जन करके जप में

रह गई कमियों की पूर्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करते हुए संध याकर्म पूरा हो जाता है।

संध्योपासना एक विशेष प्रकार का वैदिक कर्म है। हमारे यहां वेदों की आज्ञा भगवान् की आज्ञा है। वैदिक मन्त्रों का अभिप्राय अनुवाद करके भी समझा जा सकता है। वैदिक कर्म में मन्त्रों का उच्चारण यथावत् करना जरूरी है। स्वर और मात्रा तक के परिवर्तन से वह अशुद्ध और कुफलदायक हो जाता है। मनुष्य स्वयं तो अल्पज्ञ है और उसकी विद्या अनित्य है। केवल वैदिक मन्त्रों के द्वारा ही सत्कर्मों की सिद्धि बताई गयी है। जिस मन्त्र की जिस महर्षि ने सर्वप्रथम सिद्धि प्राप्त की थी वही उस मन्त्र का द्रष्टा या दर्शनकर्ता ऋषि होता है। मन्त्र के ऋषि के स्मरण से हम उसके प्रति अपनी कृतज्ञता व आदर प्रकट करते हैं। वेदाध ययन में सबका अधिकार भले ही न हो लेकिन वैदिक जीवनशैली को अपनाने का अधिकार मानवमात्र को है।

हमारे शरीर के रक्षक वस्त्रों की तरह छन्द मन्त्रों के रक्षक हैं। प्राचीन काल में देवताओं ने मृत्यु के भय से छन्दों (लय) के द्वारा अपने स्वरूप को छिपा लिया था। उससे मृत्यु की दृष्टि उन पर न पड़ने से वे अमर हुए। सनातन और अविनाशी छन्दोमय वेद मन्त्र उन्हीं की तरह मृत्यु भय से हमें बचाते हैं। वैदिक सर्वानुक्रमसूत्र में मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवताओं का संकलन मिलता है। प्रणव या ऊँकार के ऋषि, छन्द और आराध्य देवता क्रमशः ब्रह्मा, गायत्री ओर परमात्मा हैं। अग्नि को भी परमात्मा का रूप बताया गया है।

नया जनेऊ धारण करने के लिए जल से उसका अभिषेक करना चाहिए। उसके नौ धागों तथा तीन ग्रन्थियों में क्रमशः सम्बन्धित नौ देवताओं और त्रिदेवों की भावना करनी चाहिए। उसके बाद बीस बार गायत्री मन्त्र जपना चाहिए। पुराने जनेऊ को उतार कर जल में अथवा हरे पेड़ की टहनी पर रख देना चाहिए।

जूठा चन्दन भगवान् को लगाना वर्जित है। घिसा हुआ चन्दन अलग पत्ते पर लेकर स्वयं को लगाया जाता है। संकल्प में वर्णानुसार क्रमशः शर्मा, वर्मा, गुप्ता और दास शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इस महाकल्प में आरम्भ में तप रूप परमात्मा से सत् संकल्प और सत्य वचन की उत्पत्ति हुई। उसीसे रात-दिन और समुद्र पैदा हुए। जीवों का शासक काल स्वरूप सम्वत्सर प्रकट हुआ। इसके बाद परमात्मा ने सूर्य, चन्द्रमा और समस्त लोक पैदा किए।

प्राणायाम करते हुए समस्त लोकों के नियन्त्रक परमेश्वर का ध्यान किया जाता है। सूर्य क्रोध के अभिमानी देवता हैं और वे क्रोधजन्य अपराधों का नाश करते हैं। हम भगवत् प्राप्ति हेतु अपने कर्तव्याभिमान का उनमें हवन करते हैं। वे रात-दिन में भूलवश किए गए अपराधों का नाश करते हैं। अपनी हर वस्तु को भगवान् की मानने से हमारा अहंकार भी भगवान् स्वयं ग्रहण कर लेते हैं और हम स्वतन्त्र हो जाते हैं।

जल के प्रोक्षण (छिड़काव) से धरती पवित्र होती है। पृथ्वी और वेदपति परमात्मा हमें पवित्र करते हैं। जूठा, अपवित्र और नीच से दान लेना पाप है। दिन के अभिमानी देवता सूर्य हमारे इन्द्रियजन्य पापों को नष्ट करें। हम अपने पापों को उनमें हवन या भस्म करें।

वे परमपवित्र एवं कल्याणकारी जल अन्नादि के रसों द्वारा हमारा पालन करें। वे हमारे पापों को नष्ट करें। जल बायीं नासिका से अन्दर सूंघकर दायीं नासिका से अपने पापों को बाहर फेंक दें। हे जलरूप परमात्मा, तुम्हीं हमारे हृदय, यज्ञ और अमृत आदि सब कछ हो। पुष्प मिले जल से सूर्य को तीन बार अर्घ्य देना चाहिए। सूर्य नारायण ब्रह्म स्वरूप हैं। हम अंधकार या अज्ञान से ऊपर उठकर सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त हों।

प्रातः सूर्य भगवान् समस्त संसार को अपना दर्शन कराने के लिए आकाश में ऊपर की ओर उठ रहे हैं। ये समस्त लोकों को अपने प्रकाश से भर रहे हैं। अंगन्यास करना आवश्यक नहीं है। जगत् कल्याणकारी तेजोमय सूर्य की कृपा से हम सौ साल तक देखते रहें और जीवित रहें। सूर्यरूपा गायत्री तेजोमयी, शुद्ध, अमृत और नित्य ब्रह्मरूपा हैं। हर वस्तु ब्रह्मरूप है।

एक पदी गायत्री – त्रिभुवनरूपा
द्वि पदी गायत्री – सगुण-निर्गुण रूपा
त्रिपदी गायत्री – प्राण, अपान, व्यान रूपा
चतुष्पदी गायत्री – तुरीय ब्रह्म (प्रपंच से परे शुद्ध) रूपा
अपदी गायत्री – निर्गुण रूपा

माँ, तुम्हारी प्राप्ति में बाधक राग-द्वेष और काम-क्रोधादि पाप मेरे मार्ग में न आएं। जप के समय गायत्री मन्त्र के अर्थ (दिव्य प्रकाश) का ध्यान अवश्य करना चाहिए। यह सारा दिव्यप्रकाशमय है। परमात्मा अकेले ही पंच भूतरूप उपादान (सामग्री) से सृष्टि की रचना करते हैं। समस्त जीवों की इन्द्रियां और परमेश्वर की इन्द्रियां आपस में जुड़ी और एक हैं। परमात्मा हमारे चित्तों (मनों) के संचालक हैं। यज्ञ का रहस्य (भगवान् की प्रीति के लिए काम) जानने वाली प्रमुख देवता गायत्री माँ, आप अपने उपासक ब्राह्मणों से अनुमति लेकर अपने निवास स्थान मेरू (हिमाचल) शिखर के लिए सुखपूर्वक जाओ। सर्वदेवमाता गायत्री का घर देवभूमि हिमाचल (सोलनादि) है।

संध्या के बाद परमेश्वर की प्रसन्नता हेतु संक्षिप्त हवन किया जाता है। ताम्बे की वेदी में पंचभूसंस्कार करके ताम्रकुण्ड को तीन कुशाओं से साफ किया जाता है। उन कुशाओं को ईशानकोण (पूर्व) में फेंककर गाय के गोबर और जल से वेदी को लीपा जाता है। स्रुवे से पूर्व की ओर तीन रेखाएं खींची जाती हैं। उसी क्रम

से अनामिका और अंगूठें से तीन बार मिट्टी उठाकर ईशान में फेंकी जाती हैं तथा उस पर जल छिड़कते हैं। उसके बाद समन्त्र अग्नि लायी जाती है। अग्नि देवता (दिव्य ऊर्जा शक्ति) ही सूर्य की किरणों को अनेक रंगों में प्रकाशित करते हैं। वही सम्पूर्ण ओषधियों में समाए हुए हैं। वही समस्त प्राणियों का सर्वविध उपकार कर रहे हैं। हम उन्हें समिधा और घी से प्रज्वलित करते हैं।

तीन कुशाएं हाथ में लेकर प्रादेशमात्र लम्बी तीन घृताक्त समिधाएं अग्नि में छोड़ते हुए हम प्रार्थना करें-हे सूर्यदेव! हमारे पापों को दूर करके हमे आवश्यक वस्तुएं प्राप्त कराओ। हे अग्निदेव! प्रज्जवलित होकर हम यजमानों की कामनाएं पूरी करो। वेदानुसार प्रमादवश हमारे यज्ञ कार्य में रह गई कमियां भगवान विष्णु के स्मरण से पूरी हो जाती है। जितना सम्भव हो उतना कर्म अवश्य करें। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। बार-बार जन्म-मरण का सिलसिला ही महा भय है।

देव-मनुष्य और पितृतर्पण हेतु कुश, यव, अक्षत और जल से संकल्प करते हैं। अनन्तर पुष्प, तुलसीदल, तीन कुशों पर जल से तर्पण करते हैं। हे विश्वेदवगण! आप इस कुशासन पर पधारें। हर एक देवता को पूर्व की ओर एक एक अंजलि दी जाए।

मनुष्यों के लिए उत्तर की ओर तथा पितरों के लिए दक्षिण की ओर अंजलियांदी जाती है। देवताओं हेतु जनेऊ बाएं कन्धे तथा पितरों हेतु दाएं कन्धे पर रहता है। दिव्य मनुष्यों हेतु केवल गले में ही रहता है तथा उन्हें दो दो अंजलियां देने का नियम है। वायुपुराण के अनुसार तिल और कुशा के साथ दी गई वसतु अमृतरूप में पितरों को मिलती है। अग्निपुराणानुसार जीवित पिता वाले व्यक्ति को तिल-तर्पण का निषेध है। इनको तीन तीन अंजलियां दी जाती हैं। पितरों का क्रम जैसे :-

1. पिता, पितामह और प्रपितामह

2. माता, पितामही और प्रपितामही
3. मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामही
4. मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामही
5. पितृव्य (चाचा), मातुल (मामा), पितृभगिनी, श्वशुर आदि

हमारे सोमभागी पितृगण ऊर्ध्व (उच्चयोनियों) लोकों को प्राप्त हों। वायुरूप पितर हमारी रक्षा करें। पितृलोक को प्राप्त हमारे पूजनीय पितर हमारा कल्याण करें। हे जल, तुम मेरे पितरो को तृप्त करो। आहार से तृप्त हुए पितरो, अब आप शुद्ध हों। हे अग्निदेव, तुम स्वधा के द्वारा इस पितृयज्ञ को सफल बनाओ। समस्त ओषधियां हमारे लिए मधुर रस वाली हों। पिता द्युलोक हमारे लिए अमृतमय हो। धूल हमारे लिए मधुमय हो। रसरूप बसंत, शोषक ग्रीष्म, जीवनरूप वर्षा, स्वधारूप शरद् आदि ऋतुएं, आप पितरों की कृपा से हमारे लिए लाभदायक हों, हमें अच्छी पत्नी और पुत्र प्रदान करो। हम तुम्हें सूत्ररूप वस्त्रादि अर्पण करते हैं।

इसके बाद दूसरे गोत्र के मातामहादि का तर्पण होता है। उपरान्त सव्य होकर पूर्व की ओर देवता, असुर, यज्ञ, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्षवर्ग, पक्षी, जलचर, वायुचर जीवों तथा विविध नरकों में यातनाएं भोग रहे जीवों की शान्ति हेतु जलदान होता है। हम से जल चाहने वाले किसी भी जीव का तर्पण भी किया जाता है। मेरे कुल के करोड़ों पीढ़ियों के, ब्रह्मलोक तक सात द्वीपों के वासी और किसी भी जन्म के बन्धु पितृगण मेरे दिए तिलमिश्रित जल से तृप्त हों। शेष उच्छिष्ट भागी जीवों के लिए शुद्ध वस्त्र निचोड़ा जाता है ताकि मेरा सम्पूर्ण विश्वपरिवार सुखी और प्रसन्न रहे।

पितृतर्पण के समान ही मानवमात्र के उपकारक बाल ब्रह्मचारी महाभक्त भीष्म का तर्पण होता है। त्रिविक्रम भगवान् वामन (विष्णु) ने पृथ्वी, आकाश और द्युलोक तीनों लोगों में अपना

पूज्य चरण स्थापित किया है। हम इन तीनों को स्वाहा (पवित्र पदार्थ) दान करते हैं। हम भगवान रूद्र के क्रोध और बाण को नमस्कार करते हैं। मित्र देवता का रक्षाकर्म सुनने योग्य है। हे संसार सागर के स्वामी वरूण (जल) देवता, हमें सुख प्रदान करो।

समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाली सूर्यदेव की किरणें सब जीवों के अन्दर व्याप्त देखी जाती हैं। आपकी कृपा से मैं भी मनुष्यों में अत्यन्त प्रकाशमान (ज्ञानयुक्त) हो जाऊं। आप अहंकार के नाशक परमात्मारूप हंस हैं। अपने अन्दर सबका निवास कराने वाले वासु (सर्वरूप) हैं। देवताओं को बुलाने वाले (यज्ञकर्ता) होता हैं। सबके पूजनीय अतिथि हैं। आकाश में घूमने वाले व्योमसत् हैं। जल में पैदा होने वाले अब्जा हैं। चार प्रकार के रूपों में उत्पन्न गोजा हैं। मेरा आपको प्रणाम है।

हम ब्रह्मतेज से युक्त और शान्त हों। हमारे धन और शरीर को पुष्ट करो। हे देवताओ, अपने गंतव्य मार्ग को पधारें। चित्त के प्रवर्तक परमेश्वर, मैं यह यज्ञ आपके हाथों में अर्पण करता हूँ, आप इसे वायु देवता में स्थापित करो।

तर्पण के पहले या बाद यथापरम्परा अपने अपने इष्टदेवताओं का पूजन किया जाता है। जैसे श्री शिवाय नमः आदि में आवाहन से लेकर पुष्प युक्त नमस्कार तक सोलह उपचार होते हैं। पाद्य समर्पण में देवता के चरणकमलों को धोकर उसका जल मस्तक पर लगाएं। अर्घ्य से करकमलों में पवित्रजलार्पण करें। पंचामृतस्नानोपरान्त शुद्धजल का स्नान करवाएं। इसी प्रकार चन्दनमिश्रित जल से भी करें। यथासमय यज्ञोपवीत पहनाकर चन्दन या गुलाली लगाएं। पुष्प मस्तक पर और माला गले में डालें। मिठाई पात्रया पत्ते पर रखें। कपूर आदि से आरती उतारें।

आम तौर पर हमारे घरों में पांच स्थानों पर हिंसा हो जाया करती है। इस दोष को दूर करने हेतु प्रतिदिन पांच महायज्ञ करने

जरूरी हैं। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ। ब्रह्मयज्ञ के लिए गायत्री जप, वेदपाठ या गीतापाठ करना चाहिए। अन्य चार यज्ञ वैश्वदेवकर्म में आ जाते हैं। कुल दो प्रकार के करणीय यज्ञ हुए।

देवताओं के लिए हवन देवयज्ञ कहलाता है। सृष्टि के आरम्भ से ही पृथ्वी आदि देवता हमारे जीवन के लिए उपयोग की वस्तुएं दे रहे हैं। उनका ऋण अवश्य चुकाना चाहिए। हर देवता परमात्मा का ही रूप है। कीट, पशु और पक्षी आदि को भोज्य पदार्थ देना भूतयज्ञ है। सभी भूत या जीवों में परमेश्वर का वास है। पितरों को अन्न-जल देना पितृयज्ञ है। अतिथि या सनकादि दिव्य मनुष्यों में नारायण का वास है।

विशेष शुभ कर्म या अनुष्ठानों में नान्दीमुख श्राद्ध में पहले बलिवैश्वदेव किया जाता है। अशौच में यह नहीं किया जाता। बलिवैश्वदेव से बचा हुआ अन्न अमृत के समान होता है। समस्त कामनाओं का पूरक महान् अग्निदेव सभी जीवों में उदराग्नि के रूप में स्थित है। अग्निरूप परमात्मा हिरण्यगर्भ रूप में सब से पहले पैदा हुआ। यही माता के गर्भ में रहता है तथा सर्वव्यापक है। इसके लिए अग्नि अथवा जल में पांच आहुतियां दी जाती है।

समस्त जीव, अन्न और मैं सब विष्णुरूप हैं। चौदह प्रकार के जीव मेरे दिए अन्न से प्रसन्न हों। मौन होकर भोजन करना चाहिए। बाएं हाथ से अन्न और अपवित्र चीजें न छुएं। अन्धेरे में भोजन न करें। अधिक मात्रा में भोजन से रोग होते हैं। भोजन केवल आधा पेट करना ही ठीक होता है। आचमन करके भोजन करें।

कर्म काण्ड का दूसरा भाग पुरोहित का काम करने वालों के लिए है। संकल्प यजमान का अपना एक प्रकार का पता या एड्रस है, जिस के खाते में उसके सत्कर्म को जमा होना है। कर्म सकाम है या निष्काम, यह भी बताया जाता है। सकाम कर्म का

फल अस्थायी लेकिन निष्काम कर्म का फल अनन्त और अमर है। स्तोत्र, दान, जप, महामृत्युंजय जप, सन्तानगोपाल मन्त्र, वैदिक मन्त्र, तान्त्रिक मन्त्र, गोदान, छायादान, जन्मदिन, उपनयन और तीर्थश्राद्ध आदि नैमित्तिक भाग में आते हैं।

कर्मकाण्ड के तीसरे भाग पूजाहोमकर्म में षोडश संस्कार आते हैं। इसके लिए पूजनकर्म में कम्बल के आसन पर बैठकर मुख पूर्व की ओर किया जाता है। यजमान की पत्नी उसके दाहिने तथा अभिषेक के समय वह बाएं बैठती है। पूजन में क्रमशः हस्त प्रक्षालन, आचमन, पुनः हस्तप्रक्षालन, कुशपवित्री धारण, शिखाबन्धन, आसन को प्रणाम, गुरुध्यान और यजमान दम्पति को तिलक लगाकर उनके हाथों में अक्षत आदि देकर गणेशादि देवताओं का समन्त्र ध्यान करवाया जाता है। अर्घ्य में पुष्प, जल और द्रव्य लेकर गणेश जी पर संकल्प छुड़वाएं।

उपरान्त दीप, शंख, घण्टा और भूमिपूजन पूर्वक गणेश जी का पूजन करवाएं। भवन निर्माणारम्भादि में विस्तृत भूमिपूजन की परम्परा है। पुष्प लेकर गणेश जी की प्रार्थना और आचार्य आवरण करवाएं। पीली सरसों से दसों दिशाओं में रक्षा करवाएं। इसके बाद कलश, वरूण, षोडशामातृका, वसोधारा का पूजन, पुण्याहवाचन, नांदीमुखश्राद्ध, नवग्रहपूजन, अधिदेवता, प्रत्यधि देवता, पंचलोकपाल और दशदिक्पालादि देवताओं का पूजन तथा हवन करवाया जाता है। कुशाओं से हवनवेदी का परिमार्जन या सफाई करवाएं। गोवर से लेपन, रेखांकन, मिट्टी प्रक्षेपण करके वेदी के चारों ओर कुशा बिछाएं तथा अग्नि की स्थापना और पूजा करवाएं। स्त्रुवा का पूजन करके हवनसंकल्प करवाएं। घी कीचार आहुतियां देकर चरू से पूजित देवताओं को आहुतियां दिलवाएं। पूर्णाहुति शेष रखकर दिक्पाल और क्षेत्रपाल को बलि (अन्न) दें। उपरान्त क्रमशः ब्रह्मा को पूर्णपात्रदान, भस्मधारण, यज्ञपुरुष की परिक्रमा और विसर्जन करवाएं।

जन्म से हर आदमी अपवित्र होता है। संस्कार से वह पवित्र बनता है। इससे मनुष्य में सर्व सुखदायक गुणों का संचार किया जाता है। महर्षि व्यास ने सोलह प्रकार के संस्कारों का विध ाान किया है। आजकल केवल नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह और अंत्येष्टि नामक संस्कार ही प्रमुख रूप से करवाए जाते हैं। इन्हीं में समस्त गुणों के आधानार्थ प्रार्थना की जानी चाहिए।

शिशुजन्म के ग्यारहवें शुभ दिन में नामकरण संस्कार करवाया जाता है। नाम में छोटे से छोटा सांस्कृतिक, मधुर और सार्थक शब्द श्रेष्ठ होता है। इसमें देवपूजन और पार्थिव नामाग्नि के ध्यानादि के बाद पुरोहित शिशु के दाएं कान में नामोच्चारण करता है। उपरान्त सूर्यपूजनपूर्वक सूर्यावलोकन का विधान है।

पुत्रों का सम मास में पुत्रियों का विषम मास में अन्नप्राशन होता है। शुभमुहूर्त में यथाविधि और रूचि नामाग्नि के ध्यान पूर्वक हवन के बाद चांदी की सलाख से उसे खीर चटाई जाती है।

चूड़ाकरण या मुण्डन संस्कार तीसरे, चौथे या पांचवें महीने में करवाना चाहिए। परम्परानुसार शिशु के गर्भ से आए अपवित्र बालों में अदृश्य बाधाओं का भय बना रहता है। सिर की शिखा के मूल में मर्म (नाजुक) स्थान होता है, उसकी सुरक्षा हेतु शिखा का विधान है। शुभ मुहूर्त्त में विधिवत् नाई से मुण्डन संस्कार करवाकर उस पर दही, मक्खन और हल्दी से स्वास्तिक बनाकर स्नान कराएं। बाल गोबर के गोले में बन्द करके उसे पवित्र स्थान पर रखना चाहिए। हवन में सभ्य नामाग्नि उच्चारण करें।

उपनयन संस्कार से व्यक्ति की अपवित्रता दूर होकर उसमें द्विजत्व या श्रेष्ठता का प्रवेश होता है। इससे उसे वेदाध्ययन, गायत्रीजप और श्रौत-स्मार्त कर्म करने का अधिकार मिलता है। इसमें

संस्कार से पहले प्रायश्चित्त संकल्प करना अनिवार्य होता है। पूरे दिन का व्रत रख कर मन्त्रदाता गुरू जी के निर्देशन में यह संस्कार सम्पन्न होता है। नौ धागों के रूप में देवता उसके सर्वविध रक्षक बन जाते हैं। संध्यावन्दन एवं गायत्री के जप से तप का तेज प्राप्त किया जाता है। इसमें केवल बालकों को गायत्री मन्त्र की अर्थबोधन पूर्वक विशेष शिक्षा दी जाती है। गुरू के पास वह पूजा, हवन, शिक्षा, भिक्षा, दीक्षा और आशीर्वादग्रहण रूप छः अनुशासनों को पालन करता है। साथ में मेधाजनन नामक कर्म से बालक में मेधा, प्रज्ञा, विद्या और श्रद्धा की वृद्धि होती है। वेदाध्ययन से पापों (अज्ञानतावश किए अपराधों) का नाश, आयु की वृद्धि और अमृत पान का फल मिलता है। गुरू से आज्ञा लेकर घर लौटा युवक गृहस्थ जीवन में प्रवेश पाने का अधिकारी हो जाता है। गुरू उसे गृहस्थ जीवन की सफलता के लिए भी उपदेश देते हैं। इसमें सत्य बोलना, धर्म का पालन, स्वाध्याय, आचार्य को धन की भेंट देना, देवकार्य, पितृकार्य, प्रवचन, माता-पिता और आचार्य की सेवा, अतिथिसेवा, अनिन्दित कर्म करना, सन्मार्ग पर चलना, सदाचारी ब्राह्मणों का आदर और श्रद्धापूर्वक दान देना आदि शामिल होते हैं। तामसी ब्राह्मण केवल विनाश को न्योता देते हैं।

विवाह संस्कार प्रायः पच्चीसवें वर्ष में होता है। एक ही वर्ण के वर-कन्या का विवाह उत्तम माना गया है। ब्राह्म, दैव और आर्ष तीन प्रकार के विवाह ऋषि परम्परा से जुड़े हैं। राक्षस और पैशाच प्रकार के विवाह वेदपरम्परा के विरुद्ध हैं। यह संस्कार देवता और अग्नि के समक्ष होता है। माता-पिता और समाज की सहर्ष सहमति से सम्पन्न विवाह प्रशस्त माना जाता है। इस संस्कार का ध्येय केवल स्वसेवा नहीं समाजसेवा है। कुलपरम्परानुसार विवाह सर्वश्रेष्ठ होता है।

मरने के बाद के संस्कार को अंत्येष्टि कहा जाता है। इसमें शवदाह से लेकर तेरहवें दिन तक के कर्म शामिल हैं। शव का

स्नान, वस्त्रादि, तुलसी और स्वर्णादि के साथ उसे उत्तर सिर करके चिता पर रखा जाता है। यथाशास्त्र पुत्र, सपिन्डी या सगोत्री यथाधिकार उसे अग्नि देकर तेरहवें दिन तक के कर्म करता है। अस्थिचयन पूर्वक तिलांजलि देते हुए परिवार में दस दिन तक अशुद्धि रहती है। हर मास उसकी मृत्युतिथि पर पिन्डदान करते हुए बारहवीं मासिक तिथि पर वार्षिक श्राद्ध होता है। यथानियम छोटे बालकों तथा सन्यासी के शव का दाह नहीं होता। ये सांसारिक राग–द्वेषादि मलिनताओं से मुक्त होते हैं। संस्कार केवल सांसारिक मलिनताओं से मुक्ति के लिए होते हैं।

कर्मकाण्ड के चौथे भाग काम्य कर्म में कामनाओं के पूरक प्रयोग किए जाते हैं। दीक्षाप्राप्ति, द्रव्यलाभ, रोगशान्ति, अतिवृष्टि शांन्ति, अनावृष्टिशान्ति और भूत–प्रेत–राक्षस आदि की शान्ति हेतु एकादशीकाम्य आदि प्रयोगों का विधान है। इसके इलावा भी अनेक प्रकार के पूजा–अनुष्ठान विविध कामनाएं पूरी करते हैं। कर्मकाण्ड के विना कोई भी धार्मिक कार्य पूरा नहीं होता।

9

संस्कृत, संस्कृति और राष्ट्र प्रेम की आराधना

तेरह अप्रैल 1929 का बसन्ती दिन विना संदेह ऐतिहासिक रहा होगा जब विद्वान् बघाट राजा दुर्गासिंह ने संस्कृत महाविद्यालय सोलन की नींव रखी थी। सन् 1947 तक यह महाविद्यालय पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से सम्बद्ध रहा था। उसके बाद 1971 तक यह पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से सम्बद्ध रहा तथा 1971 के बाद हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला से सम्बद्ध हुआ।

ऊपरोक्त संस्था में पारम्परिक प्रणाली (संस्कृतमाध्यय) से संस्कृत का अध्ययन अध्यापन होता है। इसमें संस्कृत के व्यावसायिक पाठ्यक्रम के माध्यम से शास्त्री की उपाधि प्रदान की जाती है। इस पाठ्यक्रम में वेद, दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण और साहित्य के गहन और गम्भीर ग्रन्थों का अनुशीलन करवाया जाता है। आजकल इसमें यथारूचि आधुनिक इतिहासादि अनेक विषय भी शामिल कर दिए गए हैं। इस तरह उक्त उपाधि अधिक उपयोगी साबित हो रही है। आजकल रूसा के अन्तर्गत कालेज में प्रवेश अधिक अंकों के कठिन आधार पर कर दिया गया है। इससे पहले काफी विद्यार्थी गुणात्मक आधार की अपेक्षा मात्र समय बिताने के लिए कालेजों में प्रवेश लिया करते थे। फिर भी प्रवेश से वंचित छात्रों के लिए भी विश्वविद्यालय को कोई प्रबन्ध करना चाहिए। शिक्षा विभाग की ओर से अब शास्त्री कक्षा में छः अनिवार्य विषयों के साथ एक सातवां विषय भी शामिल कर दिया गया है। सातवें पत्र में आयुर्वेदादि विविध उपयोगी विषयों में से एक अवश्य चुनना होता है।

संस्कृत कालेजों में क्रमशः प्राक्शास्त्री-1 या +1, प्राक्शास्त्री-2 या +2, शास्त्री-1-2-3 कुल पांच कक्षाएं पढ़ाई जाती है। संस्कृत कालेज का नया भवन ठेडो ग्राऊण्ड के पास पांच मंजिला है। यह इतना विशाल है कि जनता चाहे तो इसमें सरकार द्वारा एक संस्कृत विश्वविद्यालय चलवा सकती है। समस्त विद्वान इस पक्ष में हैं। सरकार का खर्च केवल अध्यापकों के वेतन पर ही होगा, भवन पर नहीं। यह इसलिए भी आवश्यक है कि इससे जिले में भौतिक शिक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा का समुचित संतुलन बनेगा। भौतिक और तकनीकी विश्वविद्यालय तो निजी और सरकारी रूप में पहले ही पर्याप्त बन गए हैं। संस्कृत विश्वविद्यालय से संस्कृत, संस्कृति और संस्कारों के रक्षण और विकास की क्षेत्रीय परम्परा भी अक्षुण्ण रहेगी। इसके लिए हमें ऐसे विधायकों और सांसदों को आगे चुनकर भेजना होगा जो इस लक्ष्य बिन्दु को ध्यान में रखकर काम करें। उक्त संस्कृतसंस्था में अनेक आधुनिक कार्यक्रम व सुविधाएं जोड़ दी गयी हैं, जिससे संस्कृत भाषा को अधिकाधिक गौरव प्राप्त हो रहा है। वास्तव में हमारी भावी पीढ़ी का सर्वांगीण विकास संस्कृत भाषा के दिग्दर्शन पर ही निर्भर है। संस्कृत आत्माओं के संवाद की भाषा है। गूगल की अपेक्षा संस्कृत वसुधैव कुटुम्बकम् को साकार करती है।

भारतीय इतिहास की घटनाओं का भले ही हम सही काल निर्धारण न कर पाएं परन्तु उन घटनाओं से कुछ सीखने की प्रवृत्ति हमारी सर्वोत्तम पारम्परिक विरासत है।

आजादी से पहले यह संस्था नृसिंह मन्दिर के सामने वाले हॉल में चला करती थी। उस समय के माननीय आचार्यों में स्व. सर्व श्री मथुराप्रसाद दीक्षित, श्री भवानी दत्त, श्री निवास और श्री सीताराम प्रमुख थे। दीक्षित जी विविध विषयों में निष्णात्, शोधार्थी, कवि और लेखक भी थे। श्री भवानी दत्त जी व्याकरणाचार्य थे। श्री

निवास जी न केवल सोलन में अपितु जौणा जी में स्वतन्त्र रूप से घर पर भी शिष्यों को पढ़ाते थे। ये एक प्रभावशाली विचारक और यथाविचार जीवनयापन करते थे। कहते हैं, उन्होंने स्वयं अपने बाल काटने के लिए घर में शीशे फिट करवा रखे थे। तत्कालीन सम्भवतः मूलतः मद्रासी आचार्य श्री सीताराम कनिष्ठ आचार्य होते हुए भी योग्यता में किसी अन्य से कम नहीं थे। भाषा के उच्चारण पर उनका अनोखा अधिकार था। पढ़ाने के लिए प्रवेशिका कक्षा को ही पसन्द करते थे, परन्तु उनका शिष्य आगे जाकर चलता नहीं, बल्कि दौड़ता था। दुर्भाग्य वश उनके अन्तकाल में अन्तिम संस्कारार्थ उनके शिष्य ही काम आए।

साठोत्तर के दशक में यहां व्याकरणाचार्य श्री रामसिंहासन त्रिपाठी, दर्शनाचार्य श्री शालिग्राम, साहित्याचार्य श्री नत्थीप्रसाद, व्याकरणाचार्य श्री पीतांबरदत्त, दर्शनाचार्य श्री केशवराम तथा श्रीकान्त और श्री देवी दत्त जी आदि प्रमुख प्राध्यापक रहे। सभी आचार्य विद्वान् और कर्मठ हुए हैं। अंग्रेजी ज्ञानी श्री परमजीत सिंह पढ़ाते थे। इस काल में संस्थाकी छात्र संख्या एकबार इतनी कम हो गयी थी कि आचार्यों को स्थानीय पंचायतों में जाकर संस्कृत की पढ़ाई के लिए प्रेरणार्थ अभिभावकों का सहारा लेना पड़ा। उसके प्रभाव से हुई छात्रसंख्यावृद्धि संस्कृत के सामाजिक सरोकार की प्रत्यक्ष प्रमाण है। उक्त विद्वानों में से अनेक विविध योग्यताओं के साथ कवि, वक्ता और लेखक भी रहे हैं।

इससे आगे के दशकों में व्याकरणाचार्य क्रमशः श्री कुमार सिंह एवं श्री ईश्वरी दत्त, दर्शनाचार्य श्री हरिवल्लभ, श्री हरिदत्त एवं लेखराम, साहित्याचार्य अनसूयाप्रसाद, श्री सुधाकर दत्त, श्री प्रेमलाल, श्री उमादत्त तथा ज्योतिषाचार्य श्री महीधर आदि ने संस्था की हृदय से सेवा की। कुछ एक को छोड़ कर इन सभी ने विभिन्न विषयों में शोधग्रन्थ तथा अन्य विविध रचनाएं प्रकाश में लाई। इस अवधि

में व्याकरण, संस्कृत और संस्कृति को विशेष सम्मान मिला। सोलन की परम्परा से जुड़े पूर्वजों के कृपापात्र वर्तमान लोग सोलन नगर में बघाटी परम्परा का एक स्मारक भवन व अपने आदर्श राजा दुर्गा सिंह की एक स्मारक मूर्ति की स्थापना की जोह में हैं। राजा से येन केन प्रकारेण उपकृत हुए लोग एक मंच पर आकर इस कार्य को बखूबी कर सकते हैं। अनेक महानुभावों की पढ़ाई का खर्चा तो पूरी तरह कृपालु राजा ने उठाया था। उनका लगाया यह पवित्र सांस्कृतिक पौधा (सोलन) निरन्तर फल-फूल रहा है। एतदर्थ हमें उनका यथाशक्ति कृतज्ञता ज्ञापन करने में संकोच नहीं करना चाहिए। राजा साहब हमारे ''जीवनादर्श सर्वे भवन्तु सुखिनः'' की साकारमूर्ति थे। निश्चयेन उनके उक्त आदर्श से उपकृत हुए लोगों का जीवन धन्य है। परोक्षतः तो उन्होंने मानवमात्र का उपकार किया है। देश के होनहार विधायकों और सांसदों को उनके सर्वहितकारी जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। उनके करकमलों द्वारा संस्थापित संस्कृत संस्था आज निरन्तर उन्नति के पथ पर है। वह दिन दूर नहीं जब हम इसे विश्वविद्यालय के रूप में देखेंगे। वस्तुतः संस्कृत भाषा और संस्कृति से समस्त विश्व उपकृत हो रहा है। वास्तव में भारत के गुरुत्व के बीज हमारी संस्कृतिक परम्पराओं में निहित है।

हर सामाजिक संगठन की तरह ब्राह्मण संगठन का लक्ष्य भी सबके लिए सामाजिक न्याय प्राप्त करना है। सामाजिक न्याय रामकाज (भगवान् का काम) होता है। राम का काम। राम विश्व है तो काज काम है। दुनिया या सब के सुख के लिए काम। निजी स्वार्थ हमसे अन्याय करवाता है। सर्वार्थ हमसे न्याय करवाता है। यज्ञ सर्वजनहित का प्रतीक है। पुराणकथा यज्ञ सर्वजीव हित का प्रतीक है। कथायज्ञ एक अनौपचारिक शिक्षण सत्र भी है। सर्वत्र सम्भव अनौपचारिक घुमन्तु विश्वविद्यालय है। यह श्रोताओं को

सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु सचेत व सक्रिय करता है। संस्कृत या संस्कृति हमारी आत्मा है। अपने जीवन के सार आत्मा की रक्षा में ही हमारे जीवन की रक्षा निहित है।

हमें भगवान् हनुमान् जी की तरह राम काज करिबेको आतुर (उत्सुक) होना चाहिए। भगवान् और उनके भक्तों का काम है, जीवमात्र की भलाई के लिए प्रयत्नशील रहना। भगवान् या संसार एक ही वस्तु है। अपने इष्टदेवता या भगवान् का काम कौन नहीं करना चाहेगा। लंका के लिए पुल बनाने में एक गिलहरी ने भी राम काज किया था। राम का प्रयोजन केवल सीता की रक्षा नहीं अपितु स्त्री या दुर्बल की रक्षा करना था। आज रामकार्यो की गिनती ही नहीं। ब्रह्माण्ड में दुर्बल पर कोई आघात न करे, यही राम काज है। सरकार द्वारा गरीब अनारक्षित वर्ग की सेवा आज का सबसे बड़ा रामकाज है। तामसी ब्राह्मण असुर के समान होते हैं, उन्हें नियुक्त नहीं करना चाहिए।

हम अपने इष्टदेवता को समर्पणीय पुराणयज्ञ में अपनी अपनी योग्यतानुसार समर्पित होते हैं। व्यास, अर्चक, जापक, पाचक और श्रोता सभी अपना अपना हिस्सा अदा करते हैं। कोई छोटा नहीं कोई बड़ा नहीं। यही तो अद्वैत भाव या अनेकता में एकता का अनुभव है। जो अनेकों में एक को देखता है, वही सुखी है। हम अनेकों में एक को देखना चाहते हैं। सर्वे भवन्तु सुखिनः। सब को सुख मिले-यही हम सब की कामना है। यज्ञों में समर्थ लोगों द्वारा जुटाए गए पैसों से सेवाकार्य करने वालों को रोजगार मिलता है। यह भी एक रामकाज है।

हमारे इष्ट देवता हमारी सद्भावना को प्यार से ग्रहण करते हैं। वे हमारे उपहार को नहीं सद्भावना को देखते हैं। समर्पण के भाव को देखते हैं। हमारे कुलेष्ट हमारे परमात्मा हैं। वे श्रद्धा पसन्द करते हैं, आडम्बर नहीं। उन्हें हम सद्भाव से छोटी

वस्तु भी दें तो वे उसे बड़े रूप में देखते हैं। सद्भाव से न्यून उपचार भी पूरे हो जाते हैं। यथाशक्ति अपनी सेवाएं देने वाले हम लोग उनकी नजर में बराबर हैं। भगवान् के प्रति हमारी विनम्र सेवाओं में ही हमारा ब्राह्मणत्व है, श्रेष्ठता है और भगवत्सेवक रूप सामाजिक संगठन की सदस्यता है। धनियों के धन और मजदूरों की सेवा के संगम से ही यज्ञ या परोपकार सधते हैं।

सामाजिक संगठन का हर सदस्य अपने आस-पास देश और संसार में हो रहे अन्याय के प्रति सचेत रहकर उसके प्रतिकार के लिए प्रयत्नशील रहे। पुराणकथा यज्ञ का हर हिस्सा हमें यही शिक्षा देता है। यह यज्ञ समस्त वैदिक यज्ञों का सार है। वेदों का सार यज्ञ है। यज्ञ स्वयं भगवान् हैं। सामाजिक अन्याय को दूर करने में हमारा क्या योगदान हो ? इस विषय पर कथायज्ञ विस्तृत प्रकाश डालता है। आज के सन्दर्भ में वर्गाधारित आरक्षण समाज की उन्नति में बाधक हो गया है। हम इसको समुचित तरीके से समझें और प्रतिकार करें। हमारी पुराण कथाएं हमारी सृष्टि रचना के इतिहास की शिक्षाप्रद घटनाएं हैं, भले ही आलंकारिक या अतिशयोक्तिपूर्ण। अर्थ के ध्यानपूर्वक वेदसार गायत्री का जप सर्व श्रेष्ठ यज्ञ बताया गया है। यज्ञ भगवान् के प्रति हमारी श्रद्धा को बढ़ाते हैं।

संगठन का ध्येय मात्र संख्याबल नहीं होना चाहिए। संख्याबल में तो दुर्योधन भी आगे था परन्तु सत्प्रयोजन में पीछे। पाण्डव सत्प्रयोजन में आगे थे तो विजयी हो गए। संख्या बल पर सत्प्रयोजन का बल हमेशा भारी पड़ता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' रूप सत्प्रयोजन बल तो हमेशा ही अजेय रहा है। अगर पुराण कथा के माध्यम से सत्प्रयोजन को श्रोताओं में बांटा जाए तो सत्प्रयोजन और संख्या दोनों बल समाज को मिलेंगे और ऐसा समाज निश्चित रूप से अजेय बनेगा। ऐसे बलवान् समाज से ही

श्रेष्ठ लोकोपकारी विधायक और सांसद समाज को मिलेंगे। पुराणकथायज्ञ हमारे पारम्परिक संस्कारों का खजाना हैं। इनका हमें अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिए। केवल मेरे स्वार्थ के पूरक आदमी को वोट नहीं मिलना चाहिए बल्कि मेरे देश के हितकारी को मिलना चाहिए।

हमारे कुलेष्ट देवता जिनको हम कथायज्ञ समर्पित करते हैं, हमारे भगवान् या परमात्मा हैं। वे अणु होकर भी महान् हैं। वे समस्त इच्छाओं के पूरक हैं। वे हमारी सामर्थ्य नहीं श्रद्धा देखते हैं। वे हमारा शरीरनहीं, मन देखते हैं, सोच देखते हैं। उनकी पूजा का तरीका एक नहीं, अनेक हैं। किसी की पूजा छोटी नहीं। उनके चरणों में समर्पित कोई भी भेंट या प्रणाम उसी एक परमात्मा के चरणों में पहुंचता है। हम सभी के कुलेष्ट देवताओं में वही एक परमात्मा विराजमान हैं। उन सब को हमारा सतत प्रणाम हो। देव मन्दिरों में आजकल लोकतान्त्रिक प्रबन्धन की कमी खलती है।

कभी बाघल अर्की रियासत में शिरीषियों के कुलपूर्वज देव ड्यारश का सर्वहितकारी मनुष्य रूप में जन्म हुआ था। उनका जीवन लोकमंगल हेतु समर्पित था। उनकी यह साधना उनकी धर्म पत्नी को रास नहीं आई। एक दिन उसने क्रोधवश उनके ऊपर गर्म राख फेंककर उनको कुरूप बना दिया। अनन्तर वे ड्यार या गुफा में रहने लगे। उनका जीवन शिव की तरह सर्वमंगलकारी था। कल्याणकारी मनुष्य देवता की श्रेणी में आता है। पूज्य हो जाता है। वे भी पूजित होने लगे। मूर्ति रूप में स्थापित हो गए। भगवान् शिव के आराध ाक थे। महादेव कहलाए। शिव की तरह गुफा वासी या ड्यार वासी थे। अतः ड्यारशदेव कहलाए। वे हमारे पूर्वजों पर बहुत कृपालु थे, सन्तान परम्परा से हम पर भी कृपालु हैं। इनकी एक मूर्ति शिरीषी अपने साथ लाए थे जो ड्यारशघाट में स्थापित है। हमारे देवता सर्प या नाग रूप में प्रकट हुए थे। परोपकारी वस्तु पूजनीय होती है।

गीता, गंगा और गाय आदि इसी कारण पूजनीय हैं। ये ड्यार + ईश – ड्यारेश देवता हैं। उनका वास स्थान ड्यारशघाट में है। यह घाट एक पावन मिलन स्थली है। देवठन को यहां ड्यारश देवता के नाम पर मेला भी लगता है।

वर्षों पहले यहां एक खाल या छोटी सी पोखर होती थी। सभी जीव–जन्तु एक घाट पर पानी पीते थे। पवित्र मिलन स्थल को घाट कहते हैं। लोग यहां आपस में मिलते थे। प्रेम बढ़ता था। सभी शिरीषी मिलकर देवपूजन करते हैं। सन् 1962 में यहां सामुहिक रूप से अष्टग्रही की कुयोगशान्ति हेतु मार्कण्डेय पुराणकथायज्ञ सम्पन्न किया गया था। एक सदाचारी ब्राह्मण यजमान को भगवान् से जोड़ने वाली पवित्र कड़ी होती है। वह यज्ञों के माध्यम से यजमान का सर्वविध कल्याण करता है। भगवान् परशुराम हमें शास्त्र और शस्त्र में निपुण होने की प्रेरणा देते हैं। अन्याय का प्रतिकार करना सिखाते हैं। केवल ब्राह्मण संगठन की रसीद कटवाने से ब्राह्मण नहीं बना जा सकता, इसके लिए श्रेष्ठ गुणों (सदाचार) का संचय करना जरूरी है। सदाचारी ब्राह्मणों की विनति भगवान् (जगत्) को भी बरबस सुननी पड़ती है। जगत् साक्षात् ईश या जगदीश है। ब्राह्मण संगठन की सफलता ब्राह्मणों के सदाचार पूर्ण परोपकारी जीवन में निहित है। सदाचारी ब्राह्मणों के संगठन से अन्याय, अपराध और पाप कांपते हैं। शासक या सरकारें झुकती हैं। जरूरतमंद लोगों को न्याय और शान्ति मिलती है। सदाचारी विचारकों का हमारी तरह मौन या तटस्थ रहना जगत् के लिए हितकर नहीं हो सकता। इसके लिए अपना व्यवसाय भगवान् के प्रयोजन हेतु अर्पण करना पड़ता है। ड्यारश देवता के कल्याणों में यह परम्परा आज भी बरकरार है।

हमारा भारतीय जीवनव्यवहार प्राकृतिक है जबकि विदेशों में यह अप्राकृतिक है। 25 मार्च को बसन्त ऋतु में नए साल का

आरम्भ होना प्राकृतिक बात है। सन् 1752 से पहले इंग्लैण्ड और अमेरिका आदि देशों में भी नया साल 25 मार्च को ही होता था। बाद में यह दिन एक जनवरी को रखा गया, मामला अप्राकृतिक हो गया। इस दिन प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य नहीं बैठता। इस दिन उत्तरी गोलार्द्ध के दुनिया के कुल 90 प्रतिशत लोग ठण्ड से कांप रहे होते हैं। चैत्र मास की पूर्णिमा को चांद चित्रा नक्षत्र में होता है। इसी तरह वैशाख में विशाखा आदि से सब मास प्रकृति से संगति रखते हैं। हमारे पर्व–त्योहार प्रकृति से जुड़े हैं। हमारे किसान भाइयों को पता है कि सूर्य के मृगशिरा में रहने पर वर्षा का होना अस्वाभाविक है, उसमें सूर्य को तपना ही चाहिए। इसी तरह सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में जाने से वर्षा रुकनी नहीं चाहिए, होनी ही चाहिए। आर्द्रक आर्द्रा में ही बढ़ता है। जब प्रकृति में स्वभाव के विरुद्ध कोई बात होती है तो फसलों और जीवों पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसका प्रत्यक्ष कारण है, हमारे द्वारा प्राकृतिक मौसम का तिरस्कार।

बादलों की तरह ईश्वर का स्वभाव सर्वजीवोपकार है। हम सब एक ईश्वर की संतानें हैं, हम लोगों में भी उसका स्वभाव उतरना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर प्रेमस्वरूप है। हम सारी दुनियां से प्रेम करें। अपनी चेतना की सीमाओं का विस्तार ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। केवल अपने आप के लिए जीना दुःखदायी है। हम अपने आस–पास के दीन दुःखियों में अपने भगवान् को देखें और उनकी यथाशक्ति सेवा करें, जैसे भी सम्भव हो। हम अपने प्रिय सामाजिक संगठन के माध्यम से अपनी शक्ति का विस्तार कर सकते हैं। हम अपनी मातृभूमि, जल, जंगल और अपनी महान् परम्पराओं की रक्षा करें। हम दुनियां के साथ भटकने के लिए पैदा नहीं हुए बल्कि भटके हुए लोगों को रास्ता बताने के लिए पैदा हुए हैं। हमें ईश्वर ने परोपकारार्थ जन्म दिया है। हम

दुनिया की भलाई के लिए विष पीने वाले भगवान् शंकर के वंशज हैं। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी, हमारा जीवनादर्श है।

हम अपने परोपकार का आरम्भ वहीं से करें जहां हम हैं और जैसे हैं। जो भी मेरी योग्यता है या जो भी मेरी सामर्थ्य है, उसे मैं दीन-हीनों से नहीं छिपाऊंगा। भगवान् बुद्ध की तरह हमें तब तक मोक्ष की कामना नहीं करनी चाहिए जब तक आखिरी आदमी दुःखी दिखाई दे। सबके सुख में हमारा सुख निहित है। गरीब मजदूर भी हम सब का परम मित्र है। हम अपनी संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक परम्पराओं के उत्तराधिकारी हैं। हमें आम आदमी की विरोधी राजनीति को सही दिशा देने का प्रयत्न करना होगा। राजनीति आम आदमी की शासक नहीं सेविका है। हमारी संस्कृतिक परम्पराएं विज्ञान सम्मत हैं। इसमें संसार की समस्त परम्पराओं का सार निहित है। धर्म के माध्यम से अपने भीतर के देवत्व का विकास करना हमारा परम कर्त्तव्य है। जीव अहित अधर्म है। जंगली जानवरों का आनन्द उनकी इंद्रियों तक सीमित होता है। निचले स्तर के लोग भी उसी तक सीमित होते हैं। आध्यात्मिकता ब्राह्मणत्व, देवत्व या सदाचार ऊंचे दर्जे की चीज़ है। हमारी इंद्रियों का ध्येय संसार नहीं, सर्वजीवहित है।

हम दीन-हीनों में अपने भगवान् को देखें, फिर उनकी सेवा करें। यह भगवान् की सेवा है। दुर्बलता पाप है। हम दुर्बल को सबल बनाएं। पूजा के माध्यम से भगवान् से सुसंवाद स्थापित करने वाला देश केवल भारत है। अन्य देश ग्रहों तक पहुंच सकते हैं लेकिन भगवान् तक केवल भारत ही पहुंच सकता है। समाज की सेवा के लिए जन्म लेने की कामना मोक्ष की कामना से श्रेष्ठ है। विवेकानन्द जी के अनुसार हर व्यक्ति को संस्कृत (आत्मभाषा) का बोध कराया जाए। हमारी मौलिक विद्वत्ता के बीज इसी भाषा में हैं। भारत को समझने के लिए संस्कृत पढ़ना अनिवार्य है। भारतवासियों का सच्चा

सुख और गुरुत्व संस्कृत भाषागत वैज्ञानिक जीवनशैली को अपनाने में है।

हम केवल दाल-रोटी की विद्या के लिए संघर्ष न करें, परमतत्त्व के ज्ञान के लिए करें। सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य परमेश्वर की प्राप्ति है। हमारे देश की आत्मा हिन्दु धर्म है। हिन्दु धर्म ही सच्चा धर्म निरपेक्ष या सर्व शरणदाता है। हिन्दु स्वभाव से ही समस्त सम्प्रदायों का आदर करता है। हमको अपने महान् पूर्वजों पर गर्व है। उन्होंने दुर्गुणों को जीत कर सद्गुणों की स्थापना की। हम मानवमात्र का कल्याण करने वाले ऋषियों के वंशज हैं। हमारा देश गरीब की झोंपड़ी में बसता है। उनकी सेवा करना हमारा परम धर्म है। हमारा धर्म दुनिया को सहिष्णुता और परधर्म को मान्यता देने की शिक्षा देता है। भारत में विश्व भर के बहिष्कृत मतानुयायियों को शरण देने की परम्परा दक्षिण भारत के लोगों ने यहूदियों को शरण देकर निभाई है। धर्म के साथ जन्म का प्राकृतिक रिश्ता है, इसे बदलना महापाप है। धर्म का रिश्ता हमारी चेतना से है, शरीर से नहीं। जो चेतना को नहीं जानते वे धर्म को भी नहीं जानते। हिन्दु एक सनातन चेतना है।

हमें अपने देश का निर्माण स्वयं अपने हाथों करना है। अपने देश की जरूरतें अपने आप पूरी करनी है। अपने बाजार में विदेशी व्यापारियों को मनमानी छूट नहीं देनी चाहिए। विदेशी विश्वविद्यालय अपना निवेश यहां करके भारतीय शिक्षाप्रणाली के साथ न्याय नहीं कर सकता। हम केवल अपने देश के उद्यमी लोगों को अपने बाजार में रखें। विदेशी हमारा कच्चा माल सस्ते में खरीदकर देश का चांदी कूट कर ले जाते हैं। हमारे लोग क्यों न ऐसे निर्माण का काम करें, जिसका लाभ कोई और सम्पन्न देश न लेजाए। विवेकानन्द की दृष्टि में यूरोपीय सभ्यता आसुरी है। ऐतिहासिक देवविरोधी असुर विरोचन उनका आदर्श है। हमारा देश

देव संस्कृति वाला है। हम अपनी मदद अपने आप करें। हमारी भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिकता साथ साथ चलनी चाहिए। विदेशी शोषण के विरूद्ध हमारी आवाज उठनी चाहिए। हमारे लोगों में आत्मगौरव पैदा होना चाहिए। गरीब और आम आदमी की जरूरतों को देखकर हमारे देश को उत्पादन करना चाहिए। हमारा बाजार आज गरीबों का शोषक बन गया है।

माँ की रक्षा हमारा धर्म है। हम इसके पुत्र पुत्रियां हैं। धर्म का व्यक्त स्वरूप भारत है। पश्चिम केवल शरीर सुख का लोभी है। हमें अपने प्राचीन इतिहास और जीवन शैली पर गर्व है। धर्म (सर्वजनोन्नति) पर आधारित जीवन हमारा लक्ष्य है। एकता में बांधने वाली शक्ति का नाम धर्म है। भगवान् की समस्त पूजाविधियों के बीच एकता है। अल्लाउद्दीन खिलजी ने हमारी संस्कृति को नालन्दा में भून डाला था, फिर भी वह ज्यों की त्यों है। सनातन तत्त्व या धर्म कभी जलता नहीं। महान् अन्ना, रामदेव और केजरीवाल जैसे मार्गदर्शक देश को सचेत कर रहे हैं। हम अनुगामी उन पांवों के, आदर्श लिए जो बढ़े चलें। दुःखी दीनदुर्बल की खातिर, हो जाएं हंसते-हंसते बलिदान।

प्राचीन गुरूकुलों में बालक और बालिकाएं समान रूप से शिक्षा लेते थे। हमारे यहां माता-बहनों के लिए सीता, सावित्री और दमयन्ती आदर्श बताई गई हैं। भगवान् शंकर इनके लिए उपास्य बताए गए हैं। हम केवल अपने सुख के लिए नहीं शंकर की तरह सर्वजीव सुख हेतु जिएं। सीता माता हमारे लिए सहनशीलता का आदर्श है। हमारी महानता दुःखों को सहन करने में है। हम अपने लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ सरलतम जीवन जिएं। सीता जी भारतीय नारी के आदर्श की प्रतीक है। हमारी सच्ची शिक्षा अपनी मानसिक शक्तियों के विकास करने में है। हम अपने और दूसरों के हित के लिए स्वयं निर्णय लेने योग्य बन सकें। पश्चिमी

देशों का आदमी केवल अपने लिए पैदा होता है और मरता है। वहां पत्नी हाऊसवाईफ लेकिन हमारे यहां घर की माँ होती है। हमारे यहां तो परमात्मा को भी जगन्माता के नाम से आदर दिया गया है। इतना सम्मान है, नारी का। मातृत्व हमारी नारी का परम आदर्श है। महापुरूषों को जन्म देने वाली नारी ही है। माँ परोपकार और ममता की मूर्ति है। संसार के भले की बात इनसे सीखें। हम भारतीयता को छोड़कर अभारतीयता के शिकार हो रहें हैं। फल क्या मिलेगा ? केवल अशान्ति।

माता की तरक्की भारत की तरक्की है। यह भारतीय परम्परा की मूल है। इसे विविधरूपधरा दुर्गाशक्ति का नाम दिया गया है। वह हमेशा मंगल ही करती है, भले ही कड़ाई से। मंगल कार्यो में कन्याओं को शक्तिरूप में पूजा जाता है। माताएं हमारे समाज का आधार हैं। भारत माता हमारी परमदेवता है। जन्मभूमि को सर्वाधिक आदर यहीं है, अन्यत्र नहीं। हमारे अपने देश के संस्कार या गुण वन्दनीय और धारणीय हैं। परोपकारार्थ जीना ही इस देश की सबसे महान् परम्परा है। केवल अपने लिए जीने वाले सूअर और मनुष्य में क्या अंतर है ? परोपकार द्वारा अपना विस्तार करना ही सच्ची साधना है। इह चेत् अवेदीथ सत्यम्। जीते जी स्वतन्त्र हो जाएं तो ही अच्छा है।

हर देश की अपनी एक विशेषता की तरह भारत की विशेषता धर्म है। धर्म (विश्वकल्याण) हमारा सर्वस्व है। आध्यात्मिकता हमारा खजाना है। हमारे वेद हमारे पूर्वजों के द्वारा खोजे गए आध्यात्मिक सत्यों के कोष हैं। स्मृतियां हमारे आचरणों की नियामक हैं। धर्म के मूल तत्त्व सदा एक समान रहते हैं। सर्वसाधारण लोगों के लिए वेदों को पुराण का रूप दिया गया है। इनमें धर्म के सनातन तत्त्वों को कथात्मक दृष्टान्तों द्वारा समझाया गया है। हमारी कथाएं हमारा मनोरंजक इतिहास हैं। हमारा अतीत का

अध्ययन हमारे भविष्य को उज्जवल बनाता है। ऊंच-नीच, अमीर-गरीब और बड़े-छोटे सब में एक ही अनन्त आत्मा रहती है। सभी लोग सज्जन बन सकते हैं। महान् बन सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को अपने कल्याण की जगह सर्वजन कल्याण के साथ जोड़ा है। जनता की गरीबी सभी अनर्थों की जड़ है। आम आदमी के विकास से ही देश का विकास सम्भव है। हर जीव में शिव का रूप देखकर उसकी सेवा में ही सबका कल्याण है। परिश्रमी एक न एक दिन जरूर उठेगा और लुटेरा एक न एक दिन जरूर लुटेगा।

हम अच्छे बनेंगे तो संसार हमें अच्छा दिखाई देगा। हम लोगों की बुराइयों की अपेक्षा उन के अन्दर की अच्छाईयां देखेंगे तो संसार का भला होगा। भारत अपना धर्म जानता है, उसने कभी अपने धर्म का झण्डा विदेशों में नहीं भेजा। सच्चा धार्मिक केवल वही है, जिसका हृदय गरीबों के लिए तड़पता है। मूर्तिपूजा जनसाधारण के लिए सब से सरलमार्ग है। विवेकानन्द जी को भी एक मूर्ति पूजक ब्राह्मण रामकृष्ण की ही आशीष् मिली थी। देवमूर्ति सद्‌गुणों का कुन्ज होती है। निराकार के पूजक निराकार भगवान् को जरूर मानें परन्तु साकार की पूजा करनेवालों को बुरा क्यों कहें। नीच, अज्ञानी और दरिद्र भी हमारे भाई हैं। प्रत्येक भारतवासी हमारा अपना भाई है। भारत के कल्याण में ही हमारा कल्याण है। हम आदर्श मनुष्य बनें। मूर्तियों से जुड़े यज्ञ परोपकार के प्रेरक मधुर प्रतीक हैं।

हमारा भारत एक अखण्ड और अजेय देश है। इसमें नचिकेता जैसी श्रद्धा और आग (शक्ति) है। हमें अपने देश के लिए जीने की जरूरत है। हमारा देश सत्य को पाने की एक प्यास है। हम अमृत या सनातन तत्त्व के पुत्र हैं। भारत अपने अन्दर की खोज है। अध्यात्म या सनातन धर्म इसी का नाम है। ब्रह्माण्ड में घटित

घटनाएं हमारा इतिहास है। हम घटनाओं से सीखते हैं। सन् या ईस्वी घटनाओं की अपेक्षा गौण हैं। हमारे जीवन और मरण में एकरूपता रूप सनातन तत्त्व की साधना है। हर व्यक्ति अनन्त यात्रा का एक छोटा सा यात्री है। हर आदमी अपनी जीवन साधना से एक प्रकाशस्तम्भ बनने के लिए स्वतन्त्र है। भारत ने ईश्वर को आदमी के अन्दर प्रतिष्ठित किया है। हमारी सनातन यात्रा मंगलमय हो। हम अपने आत्मा के अधीन जिएं, भूत (प्रकृति या आदत) के अधीन नहीं। वही असली अध्यात्म होगा।

10

मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

1. देवता के प्रतिनिधि गूर या दिवां की वाणी भले ही विज्ञान को अस्वीकार हो परन्तु जिनको इस वाणी से लाभ होता है, उनका वह परमसमाधान है।
2. शरीर, मन और दीमाग से परे समाधि (समस्त संसार के साथ एकता की अनुभूति) अवस्था तक विज्ञान की पहुंच नहीं हो सकती।
3. राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री का चुनाव सीधे जनता द्वारा होना चाहिए। (अन्ना हजारे)
4. परम्परानुसार श्रावण मासके सोमवार के व्रत में दीमक वाली मिट्टी से बने शिवलिंग का पूजन और जल-प्रवाह करने से समस्त मनोकामनाएं पूरी होती हैं।
5. बच्चा बच्चा राम का राघव जी (भगवान्) के काम का।
6. हमारा हिन्दुत्व या सर्व जनकल्याणकारिता राष्ट्र को समर्पित हो।
7. बुशहर राजवंश की मुख्य गद्दी कामरू फोर्ट (सांगला) में है। जिनका मूल यदुवंशी श्री कृष्ण के पौत्र प्रद्युम्न में निहित है।
8. सोलन भूकम्प के सबसे खतरनाक जोन नम्बर 5 में स्थित है, जिसका 98 प्रतिशत से अधिक भू-भाग कांगड़ा में आता है।
9. भूकम्प की तीव्रता का पता उसके केन्द्र से निकलने वाली ऊर्जा तरंगों से चलता है।
10. प्रदेश के 807 मकान भूकम्परोधी तकनीक से नहीं बने हैं।
11. राष्ट्रवादी होने का अभिप्राय राष्ट्र की अखण्डता (एकता) को ध्यान में रखकर काम करना है।
12. रूसा शिक्षा अभिमान में केवल एक ही कमी है कि इसमें कम अंक वालों को प्रवेश नहीं मिल पाता।
13. यूं जो अंधेरा भागने लगा हमसे, जरूर कहीं उजाले की आहट हुई है।
14. उत्तराखण्ड का विनाश हमारी परम्परागत पर्वत (प्रकृति) पूजा या आदर में हमसे हुई चूक की ओर संकेत करता है।
15. ब्राह्मणत्व का मूल विचार बिन्दु है-वसुधैव कुटुंबकम्।

16. पहाड़ों में चीलों की अपेक्षा अखरोट के पेड़ पानी को रोकने में अधिक सक्षम हैं।
17. शास्त्री आदि कक्षाओं में रूसा के माध्यम से आयुर्वेद, संगीत और पुराणादि विषयों का शामिल होना हमारे लिए वरदान से कम नहीं।
18. मुफ्त में प्राप्त वस्तु से मनुष्य में कार्येच्छा क्षीण होती है।
19. हाथ में बांधा गया मौली का रक्षासूत्र व्यक्ति के लिए हर प्रकार से मंगलकारी होता है।
20. बाहरी साधनों की अपेक्षा आत्मबल से कार्य में सफलता मिलती है।
21. देहहितं सह देशहितं मम करणीयम्।
22. गेंदे के फूल को छूने से बन्दर खुजली के मारे भाग जाते हैं। (प्रयोगकर्ता-रामगोपाल ठाकुर, जुब्बड़हट्टी)
23. रामनाम की बनी है खेती, तुम बन जाओ हाली। हिरदय के दो बैल बना लो, क्यों फिरते हो खाली (करयाला से)
24. हनुमान जी की प्रेरणा-राम (भगवत्) काज करिबेको आतुर।
25. गोमूत्र में तत्त्व-पोटाशियम, सोडियम, नाइट्रोजन, फास्फेट, यूरिया और यूरिक एसिड आदि।
26. दादा फाल्के के संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित पिता एल्फिंस्टन कालेज बम्बई में प्राध्यापक थे।
27. जीव की गति भ्रम (संशय) से ब्रह्म (एकता) की ओर होती है।
28. रचनात्मक व्यक्ति देवता तथा ध्वंसात्मक व्यक्ति असुर होता है। ध्वंस के नियन्त्रक भगवान् शिव हमें ध्वंस के भय से बचाते हैं।
29. ब्राह्मण मानवमात्र का सहयोग लेकर यज्ञ या सर्वजीव सुखाय काम करता है और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है-गायत्री जप।
30. 20 अप्रैल, 1857 को कसौली में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह में दरोगा बुधराम, सूबेदार भीमसिंह और पण्डित रामप्रसाद वैरागी शहीद हुए थे।
31. जंगल पृथ्वी माता के आवरण वस्त्र हैं।
32. देवता विशेष सम्बन्धी परम्पराओं की रक्षा उससे सम्बन्धित कल्याणों (सेवकों) के सह योग से होती है।
33. स्थानीय वरिष्ठ साहित्यकार श्री शिवसिंह चौहान के अनुसार राजा दुर्गासिंह की रानी साहिबा ने आज की विकसित सोलन का सपना (नींद में) पहले ही देख लिया था।
34. जंगल के पास असुरक्षित-मक्की, धान, गेहूं , आम और लीची।
35. जंगल के पास सुरक्षित-हल्दी, भिंडी, जिमीकन्द और अदरक

36. डा. अम्बेदकर के अनुसार उनके समय में दलितवर्ग को स्कूलों में प्रवेश और घोड़ा गाड़ी में बैठने की अनुमति नहीं थी। (अमानवीय व्यवहार)
37. सर्वविद्यामय सरस्वती का पारम्परिक बीजमन्त्र–ऐं
38. देवठी के श्री रामकृष्ण वालिया के अनुसार राजा दुर्गासिंह शिवदयाल ट्रस्ट की बैठकों में चाए तक नहीं पीते थे। यह कहकर कि वे दान के पात्र नहीं है, गरीब दान का पात्र होता है।
39. शिरगुल देवता का मूल मन्दिर चूड़धार में और बिजट देवता का सराहां में है।
40. महाभारत कालीन कांगड़ा का राजा सुशमचन्द्र पापी कौरवों की ओर से लड़ा था।
41. कोहिनूर की शकल में पेश किए जाने वाले अमेरिकी हीरे रूप लालच से बचना कोई आसान बात नहीं है।
42. शिमला के स्व. आचार्य दिवाकरदत्त शर्मा के अनुसार शोध करने योग्य मौलिक रचना भी शोध ही होता है।
43. चिकन पॉक्स और चेचक की शामक शीतलामाता मीठे गुलगुले चढ़ाने से प्रसन्न होती है।
44. सरकाघाट के स्व. हुताशन शास्त्री द्वारा सम्पादित मण्डी से जुड़ा साप्ताहिक पत्र–शक्तिदर्शन
45. अनुभव (विज्ञान) तर्क से श्रेष्ठ होता है।
46. प्रह्लाद के पुत्र विरोचन और इन्द्र ने प्रजापति ब्रह्मा के पास अध्ययन करके इन्द्र ने सात्विक ब्रह्मज्ञान परन्तु विरोचन ने तामसिक भ्रमज्ञान प्राप्त किया था। जैसे संस्कार वैसा ज्ञान।
47. पी.जी.आई चण्डीगढ़ के न्यूरोलॉजी विभाग के अनुसार पूर्वजन्म की हत्या के निशान इस जन्म के शरीर में दाग के रूप में मिले हैं।
48. मणिपुर राजपुत्री चित्रांगदा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन के वीर पुत्र बभ्रुवाहन से जब महाभारत युद्ध का हाल पूछा गया तो उसने बताया था कि युद्ध में केवल एक सुदर्शन चक्र (विश्वसंचालन) के इलावा कुछ भी नजर नहीं आ रहा था।
49. छोटी छोटी कोशिशों से पानी–बिजली की बर्बादी रूक सकती है।
50. समस्त पापनाशक निर्जला एकादशी का व्रत स्वयं निर्जल रहकर 'ऊँ नमों भगवते वासुदेवाय' मन्त्रपूर्वक मीठा जल पिला कर लिया जाता है।
51. रोग और प्रेतात्मा निवास–कामाख्या मन्दिर आसाम से प्राप्त अम्बुवाची

वस्त्र का ताबीज धारण करना (समस्याकारण–अमानवीय आचरण)

52. कौरवों द्वारा बनाया गया लाक्षागृह वर्तमान में हरियाणा के जिला पिन्जौर जोकि हिमाचल प्रदेश की सीमा के साथ जुड़ा है में माना जाता है। लाक्षागृह के अन्दर विदुर द्वारा बनवाई गई गुफा हिमाचल के जिला सोलन के करोल पर्वत पर निकलती है। करोल पर्वत पर लगे बान के वृक्षों के पत्ते उस गुफा के जल द्वारा पिन्जौर में निकलते हैं, ऐसा माना जाता है।
53. 15 अगस्त 1947 तक बघाट रियासत के पास 12 में से केवल तीन परगने बाकी बचे थे।
54. हमें दूसरों को कुछ देने के अवसर की खोज जारी रखनी चाहिए।
55. सूर्य ग्रह के अशुभस्थान – 6, 7, 10 (प्राण)
56. चन्द्रमा ग्रह के अशुभस्थान – 6, 8, 10, 12 (मानसिक शक्ति)
57. मंगल ग्रह के अशुभस्थान – 4, 8, 3 (रक्त और दाम्पत्य सम्बन्ध)
58. बुध ग्रह के अशुभस्थान – 3, 8, 9, 10, 11, 12 (वाणी)
59. गुरू ग्रह के अशुभस्थान – 6, 7, 10 (बुद्धि)
60. शुक्र ग्रह के अशुभस्थान – 1, 6, 9 (वीर्य)
61. शनि ग्रह के अशुभस्थान – 1, 4, 5, 6, (उदराग्नि)
62. राहु ग्रह के अशुभस्थान – 1, 2, 5, 7, 12 (मनोबल)
63. केतु ग्रह के अशुभस्थान – 6, 7, 11 (प्राण)
64. बघाट पर गोरखा आक्रमण – सन् 1803 से 1805
65. नियामक और व्यवस्थापक ग्रह – शनि (हमारे आचरणों का जज)
66. एकादशी के दिन भगवान् विष्णु और उनके भक्त अन्न ग्रहण नहीं करते।
67. परम्परानुसार पुरी में जगन्नाथ जी के रथ को सभी जाति के लोग खींचते हैं।
68. आषाढ़ कृष्ण एकादशी का व्रत करके भक्त अम्बरीष दुर्वासा के क्रोध से बचे थे।
69. मानसून हवाएं मई के दूसरे सप्ताह में हिन्द महासागर से चल कर, अण्डमान होकर, पहली जून को केरल में तथा बाद में हिमाचल से टकराकर उत्तरी भारत के मैदानों सहित केरल और राजस्थान में वर्षा करती है।
70. भावपूर्ण जापानी कविता हाईकु की तीन पंक्तियों में क्रमशः 5, 7 और 5 अक्षर होते हैं।
71. प्रो. जी.सी. त्रिपाठी के अनुसार बघाटी आदि पहाड़ी बोलियां ऋग्वेद

काल की हैं।

72. सदा स्मरणीय – माता, पिता, गुरू और भगवान्।
73. तीस साल से ऊपर की आयु में अस्थिमज्जा की कमी हो जाने से हड्डी-विकार की सम्भावना रहती है।
74. सत्ययुग की प्रारम्भ तिथि अक्षय तृतीया विवाहादि समस्त शुभकार्यों के लिए मंगल दोष मुक्त और अनपुच्छ सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त माना जाता है।
75. आज के असली विश्वविद्यालय पुस्तकें (शब्दब्रह्म) हमारी निराशाओं को थपकियां देकर सुलाती हैं। (डा. जाकिर हुसैन)
76. पुस्तकें हमारे आत्मा को विचारों से पुष्ट करती हैं।
77. जो सरल, सहज और सुव्यवस्थित है वह अथाह परिश्रम में भी थकता नहीं।
78. ऋग्वेदकालीन पवित्र नदी सिन्धु लेह से 8 कि.मी. दूर बहती है जिसका मूल मानसरोवर है।
79. छपी रचना में जीवन्त सक्रियता होती है जो प्रकृति और समाज की गतिविधियों से प्रेरित होती है।
80. धर्म की तीन शाखाएं – यज्ञ, अध्ययन और दान
81. विद्वान् ब्राह्मणरूप वृक्ष का मूल उसकी संध्या है।
82. सृष्टि के आरम्भ में पितामह ब्रह्मा ने मनु और शतरूपा को पैदा किया, उनसे क्रमशः उत्तानपाद, प्रियव्रत और देवहूति पैदा हुए।
83. अधिकतर कन्या भ्रूणों के हत्यारे अल्ट्रासाउन्ड तकनीक से वाकिफ पढ़े-लिखे और समृद्ध लोग होते हैं।
84. स्फटिक माला धारण करने से तनाव कम होता है।
85. चौमासा – आषा. शु. 11 से देवठन तक, क्षीरसागर में विष्णु शयन, सर्पवास पूजन, शाक-भाजी त्याग, पलंग ओर पत्नी संगत्याग, समस्त तीर्थ वास रूप ब्रज की यात्रा।
86. वटवृक्ष-राष्ट्रीय वृक्ष, पितृप्रसादक, पति को दीर्घायु प्रदायक, इसका दूध श्वास रोग पर रामबाण
87. गुरू-व्यक्ति + ईश्वर का योजक, गुरूपूर्णिमा को जाग्रत, दुःख-मृत्यु से परे, संध्या में प्रणम्य, वेदरचयिता
88. आयुर्वेद-मात्र देह की अपेक्षा सम्पूर्ण जीवन का चिकित्सक।
89. लघुता से प्रभुता भिले, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटीले शक्कर चली, हाथी के शिर धूरि ।।
90. गौमाता-समुद्र मंथन से निकला रत्न, देवताओं के लिए हविष्योत्पादक, गोबर से बिल्ववृक्ष, गोमूत्र से देवाहार गुग्गलु, ब्राह्मण और गौ का कुल (वंश) एक ही।

91. भंगायणी देवी-हरिपुरधार में स्थान, बागड़ के राजा गोगापीर और शिरगुल की मददगार धर्मबहिन
92. पंचक-कुम्भ और मीन राशि के पांच नक्षत्र, मृत्यु से आत्मा की भटकन, अन्यों की मौतों को रोकने के लिए पांच पुत्तलों के दाह का विधान, बारहवें दिन नक्षत्रदेव-यम-महामृत्युंजय-श्रीपूजन।
93. बृहस्पति-प्रभास में शिवोपासना से देवत्व और ग्रहत्व प्राप्ति, यज्ञ में बाधा डालकर देवों को भूखे मारने वाले असुरों को रक्षोघ्न मंत्रप्रयोग से भगाने वाले
94. स्वस्तिवाचन-समस्त देवताओं की मांगलिक प्रार्थना
95. वेद के अशुद्धोच्चारण से महापातक
96. उच्चारण दोष निवारक-हरि ऊँ का उच्चारण
97. शक्ति-शब्द विशेष और अर्थ विशेष का सम्बन्ध बताने वाला ईश्वरीय संकेत।
98. हवन में अग्निस्थापन के बाद पत्नी-पति के दाईं ओर।
99. कन्यादान में पत्नी-दाएं
100. अपत्नीक पुरूष-यज्ञ में अनर्ह
101. सूर्य उत्तरस्थ ध्रुव से आकर्षित
102. उत्तर की ओर पैर करने से प्रगतिशील विद्युत्प्रवाह मस्तक से पैर की ओर प्रवाहशील
103. रजोगुणी आयुष्यवर्धक मन्त्र-यिंम्बक
104. तामसी अंग-मृतक की हड्डी आदि (असुर यज्ञ में फैंकते थे)
105. उन्चास मरूत्-विद्युत् शक्ति स्वरूप
106. माला के 108 मनके-गोलाई में नक्षत्रों (ब्रह्मांड) के 108 चरण
107. आशुफलदायक औषधी-कुश
108. नर से नारायण तक के मार्ग का परिष्कारक-वेद व्यास
109. युक्तिप्रमाणाभ्यां हि वस्तुसिद्धिः।
110. अनन्ताः वै देवाः।
111. दर्भः परिपातु विश्वतः।
112. पूर्व अंग पूजन-अंगी (परमात्मा) के अंगों का
113. निष्कामता संकल्प-भगवत् प्रीत्यर्थ
114. द्रव्याभावे-द्रव्यं मनसा परिकल्प्य समर्पयामि

115. कलशस्थापन–अष्टदल कमल पर, स्वास्तिक लिखकर, तीन लपेट मौली लगाकर
116. ईशान (पूर्व) कोण में नवग्रह मण्डल
117. पूजनक्रम–आचमनादिक, स्वस्तिवां, षोड्शमातृ, नान्दी, आचार्यावरण दिग्रक्षण, मण्डप, ग्रहहोम, नवाहुति, बलि (सात्विक), पूर्णाहुति, संस्रवप्राशन, पूर्णपात्रदान, अभिषेक, विसर्जन, दक्षिणा, भोजन, आशीः।
118. शक्तिदायक मन्त्र–सृष्टिस्थिति विनाशानां शक्ति भूते सनातनि। गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।।
119. नैमिषारण्य–चक्रतीर्थ, पितृस्थान, सूत द्वारा पुराणवाचन, सोमवती अमावस को मेला, प्रधान मन्दिर ललिता देवी, धर्मराज मन्दिर आदि
120. छोटी इलायची–दाह, वात, कफ शामक, मूत्रल, अग्निवर्धक
121. 18वीं शती में सिरमौर को मुगलों से बचाने वाला वीर–नेगी नोतीराम
122. चम्बा नगर को पानी लाने के लिए अपना बलिदान करने वाली–चम्बा की रानी
123. इन्सान के कर्म ही उसकी जाति को निर्धारित करते हैं–साईं (शिरड़ी)
124. सबसे बड़ी उपाधि–कुसंस्कारों को छुड़ाने वाले मार्गदर्शक की
125. अनुत्तरदायी जनप्रतिनिधियो सावधान, सोया शेर (आम आदमी) जाग गया है।
126. सम्मानदान गुणों पर विश्वास बढ़ाता है।
127. सृष्टि की हर वस्तु में लोकमंगलकारी संगीत व्याप्त है।
128. सत्य, अहिंसा और सविनय अवज्ञा का पुजारी–स्व. नेल्सन मंडेला
129. हिमाचली अन्ना हजारे–लक्ष्मी चन्द (सोलन)
130. उत्तरी भारत की सीमाओं का स्मरणीय रक्षक–वीर जोरावर सिंह (नादौन, हमीरपुर)
131. निर्माणाधीन स्टेचु ऑफ यूनिटी–गुजरात में यमुना के किनारे विश्व की सर्वोच्च (182 मीटर) सरदार पटेल की प्रतिमा।
132. विष का अधिष्ठातृ देवता–माहुनाग
133. नयी पीढ़ी को भारतीय विरासत से जोड़ने वाला सर्वाधिक पठित पौराणिक उपन्यासकार–नरेन्द्र कोहली
134. स्वास्थ्यरक्षक द्रव्य–तुलसी, पोदीना, अदरक, मोलाठी, काली मिर्च, आंवला और बहेड़ा।
135. राह पकड़ तू एक चलाचल/पा जाएगा मधुशाला (भगवदानन्द)–कवि बच्चन
136. चलते रहना/ही नियति है हमारी/यात्रा ही गन्तव्य/गतिशीलता बनी रहे/मात्र इतना ही मन्तव्य (विश्वनाथ)

137. वर्तमान में आरक्षणीय–हर वर्ग के गरीब
138. चाय वाला भी प्रधानमन्त्री बन सकता है।
139. देश की कमजोरी–कमजोर सरकार
140. हमारी चुनौतियां–उग्रवाद, भ्रष्टाचार, तस्करी और नशाखोरी
141. सिरमौरी वीरगाथाएं–मदना, कमना, जगदेव, होकू और छीछा
142. एक देश (कश्मीर) में दो संविधान व ध्वज क्यों ?–श्यामाप्रसाद मुखर्जी
143. समाज में नैतिक मूल्यों का रक्षक–आर.एस.एस.
144. देवी सती का बायां कान–भीमाकाली मन्दिर (बुशहर)
145. असरदार लघुकथा–छोटी, कुछ न कुछ ज्ञान छोड़ने वाली, सही तरीके की और आधे पन्ने तक सीमित
146. हमारा राष्ट्रीय पशु–बाघ
147. हिमाचल का राज्यपशु–बर्फानी तेन्दुआ
148. धर्माधारित कानूनी भेद भाव का कानूनी आधार–1937 में अंग्रेजों द्वारा निर्मित मुस्लिम पर्सनल लॉ एक्ट
149. मनुष्य को परमात्मा का सर्वोत्तम उपहार–अच्छे बुरे का भेदक विवेक
150. ऐतिहासिक पाण्डव गुफा–करोल पर्वत
151. डर–मन की एक अवस्था
152. सोलन का विशेष कृषि उत्पाद–मशरूम
153. पुदीने के उपयोग–पित्ती, अतिसार, उल्टी, खुजली, कुपाचन
154. गरीब परिवारों के मददगार–शनि सेवा सदन पालमपुर और दिव्य हिमाचल
155. देश की जरूरत–समान नागरिक संहिता
156. कृत्रिम साधनों से साल भर उगाया जा सकने वाला व्यावसायिक फूल–गुलदाउदी
157. लवी मेले का मुख्याकर्षण–शीत मरूस्थल का जहाज चामुर्थी घोड़ा
158. हजारों साल जीकर चुपचाप मर जाने वाले ओक वृक्ष से केवल एक दिन जीने वाले लिली के फूल का जीवन श्रेयस्कर है–वर्डसवर्थ
159. ज्ञान की पहली दीक्षा की भाषा–अपनी बोली
160. बूढ़ा नृत्य–गिरिपार क्षेत्र में वीरगाथाओं पर आधारित
161. हिमाचल की आर्थिक राजधानी–सोलन
162. सबसे पुरानी गढ़िया करयाला पार्टी का वर्तमान प्रतिनिधि–हिमानी कला मंच, धार (देवठी)
163. करयाला पार्टियों और ब्राह्मणों का कलंक–नशों का सेवन।

164. युवकादि सामाजिक संगठनों की कमजोरी–व्यक्तिगत स्वार्थ एवं वर्गीय संकीर्णता

''अन्मोल सत्य''

- सनातन धर्म का मूल सिद्धान्त–कर्मफल
- ईश्वर निवासस्थान–संसार या विविधता में
- जम्दग्नि का गुरुकुल स्थान–उत्तरकाशी
- तुलसी विवाह मुहूर्त्त–देवठन
- माना जाता है कि बपतिस्मा में सेवनीय–निन्दित पदार्थ
- छठे स्थान में विशेष बलवान् (शुभकारी)–पापी ग्रह
- रसोई की दवाइयां–हींग, अजवायन, मेथी, दालचीनी, लौंग, इलायची, कालीमिर्च और हल्दी
- लेखन कर्म–विषपान कर के अमृतदान, अन्यायग्रस्त और कमजोर के साथ खड़ा होना, शोषण के खिलाफ लड़ाई और सच्ची बात।
- आत्मा द्वारा प्रेरित बुद्धि ही विश्वकल्याणकारी है।
- गो सेवा सदन डांगरी (सोलन) स्थानीय लोगों द्वारा संचालित संस्था है।
- प्रयाग–तीर्थराज, अमृतकलश से गिरी अमृत बून्दें, अदृश्य सरस्वती का संगम स्थल, त्रिवेणी, इलाहाबाद, कुम्भ मेला, प्रकृष्टः सर्वयागेभ्यः।
- अक्षयवट–संगम पर अकबर निर्मित किले के अन्दर, पूजन से अक्षय फलदाता, प्रलय में भी शेष
- हरिद्वार–शिवलिंग, ब्रह्मकुण्ड घाट, गंगा आरती, कुशावर्तघाट, मेला वैशाख संक्रान्ति, दक्षप्रजापति मन्दिर, सतीकुण्ड, ऋषिकुल आदि
- भारतीय मूल्यों के लिए गहन आस्थावान फिल्मकार–दादा साहब फाल्के
- शरीर ओर विचारों का शोधक–तीर्थजल (संध्या में प्रयोज्य)
- सर्वप्रथम पृथ्वी से दिव्यकमलोत्पत्ति फिर वेदस्व रूप सर्व भूतात्मा ब्रह्मा की उत्पत्ति।
- ब्रह्मा के सिर, बाहु, पैर, सांस, नसें, खून और हड्डियां क्रमशः–आकाश, दिशाएं, धरती, हवा, नदियां, समुद्र और पर्वत। (जगत् रुप ईश–जगदीश)
- अनगिनत तीर्थो का वास–गंगा, यमुना और सरस्वती
- संगम में आदि वेणी माधव–जलरूप
- अमृतकुम्भ–चौदह रत्नों में से एक
- जयन्त के साथ अमृत कुम्भ के चार रक्षक–सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति और शनि

- जयन्त के बॉडी गार्ड–शनि
- अमृत को पाने हेतु देवासुर संग्राम काल–बारह सौर वर्ष
- ईश्वर रूप स्वयं को जानना ही ईश्वर को जानना है।
- सायर के त्योहार पर आस–पास की ठकुराईयों द्वारा राजा को नजराने पेश किए जाते थे।
- जीव या जीवात्मा–परमात्मा के तेज का एक कण
- प्रेमविवाह में दोष–पारम्परिक संस्कारों का ह्रास, माता–पिता पर दबाव, छिपाव और फालतू दिखावा।

''प्रेरक जीवन सूत्र'' (शुभतारिका अम्बाला, कृष्णांक–12 से सादर साभार)

1. खरीदी गई वस्तु की कीमत उसके सदुपयोग से चुकाई जा सकती है।
2. गीदड़ की तरह डरपोक को भय दिखाकर फोड़ लेना और अपने से अधिक शक्तिशाली को नम्रता से वश में कर लेना ही कूटनीति है। (पंचतन्त्र)
3. एक दिन भी जी मगर तू ताज बन कर जी।
4. मोबाइल की विद्युत्तरंगों के कारण आंखों और त्वचा में जलन हो सकती है।
5. त्याग अगर इसलिए है कि कुछ मिलेगा तो यह सौदा हुआ परोपकार नहीं।
6. तेरा ऐसा सौभाग्य हो कि जीवन के अन्त तक तेरा पति ग्यारहवां पुत्र (यौवनान्त में ब्रह्मचारी वत्) हो जाए।
7. मैंने अपने कुलदेवता भगवान् शिव के सामने झोली फैलाई कि बेटे के ठीक हो जाने पर मैं पैदल आकर तुम्हारे दर्शन करूंगी। (एक माता)
8. देवियां ही हैं जो औरत को भगवान् का दर्जा देती हैं।
9. दुःखों के बीच भी जो विचलित नहीं होता, मृत्यूपरान्त भी जिसका अस्तित्व है–वह अमर है। (लाओत्से)
10. बाह्य जगत् की परिस्थितियां मानव के अन्तर्जगत् द्वारा परिचालित होती हैं।
11. सन् 1848 से पहले समाचार प्राप्ति का साधन नौकाएं, घोड़े और कबूतर होते थे।
12. अपनी अपनी रूचि के व्यवसाय और तदनुसार शिक्षा से सफलता और गहरा आत्मसन्तोष मिलता है।
13. होड़ (प्रतियोगिता) की भावना एक स्वाभाविक मनोवृत्ति है, इस भावना को सही दिशा मिले, तभी हम उन्नति की ओर बढ़ सकते हैं।
14. जीवन का स्तर नहीं, बल्कि जीवन की गुणवत्ता का महत्त्व है।
15. आलू चिप में स्टार्च, चिकनाई और नमक आदि हानिकारक तत्त्व होते हैं।

16. फल-सब्जियों से हमें बहुमूल्य खनिज, विटामिन और रेशा मिलता है।
17. ऊटपटांग नए फैशन के कपड़े, बैटरी वाले महंगे जूते आदि प्रदर्शन की चीजों की बजाए उपयोगी, टिकाऊ और उचित मूल्य की चीजें खरीदनी चाहिए।
18. बचे हुए पैसे को हम अपनी प्रतिभा और योग्यता के विकास में खर्च करके अपना जीवन सुधार सकते हैं।
19. बुद्धिजीवी लोग सरस्वती के दरबार में असभ्य भावना नहीं रखते ।
20. सबते सेवक धर्म कठोरा।
21. विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन्तता का परिचय देते हुए डा. महाराज कृष्ण जैन (एक मौलिक व्यक्तित्व) की तरह बुलदियों को छुआ जा सकता है।
22. अपने मन की डाली हरी रखो तो उस पर चिड़िया अवश्य चहकेगी।
23. उनकी आवाज और स्वभाव में विनम्रता थी, दीनता नहीं।
24. दुनिया जैसी है, उसी में से होकर हमें अपने जीवन का मार्ग बनाना है।
25. डॉ. जैन निराश, परिस्थितियों से हताश व जीवन में हारे हुए लोगों को प्रेरणा देने में विश्वास रखते थे।
26. बचकाना और बेवकूफाना चीजें तो लोग खूब छापते हैं, काम की चीजों को छापने से डरते हैं।
27. डॉ. जैन साहित्य की दुनिया के स्टीफन हॉकिन्स थे।
28. उन्होंने साहित्य सेवा को एक पावन लक्ष्य माना।
29. वे भारत वर्ष में पत्राचार पाठ्यक्रम के सूत्रधार तथा अपने आप में एक आदर्श संस्था थे।
30. वे पद, प्रतिष्ठा और पुरस्कार की अभिलाषा से बहुत दूर रहते थे।
31. साहित्यकार अपने स्वरचित साहित्य के माध्यम से जीवित रहता है।
32. कहानी-लेखन पाठशाला नाम से चाहे महाविद्यालय भर है पर वह विश्वविद्यालय से कमतर नहीं है।
33. किम्वदन्तियां व्यक्तिगत नहीं, सार्वजनिक हुआ करती है।
34. खूब पढ़ो और फिर लिखो, भले ही कम लिखो।
35. पत्रलेखन में नियमितता डॉ. हरिवंशराय बच्चन से सीखी जानी चाहिए।
36. पत्र औपचारिकता से अलग किसी आत्मीय कोने की परछाई होते हैं।
37. पाण्डित्यप्रदर्शन या वाग्विलास हद से आगे बढ़ जाए तो भाषा की महिमा क्षीण होने लगती है।
38. जैन साहब ने भाषा को हवा, पानी और धूप की तरह उदार व सर्व सुलभ बनाया।

39. वे प्रतिकूल परिस्थितियों में भाग्य को परे रखकर कर्म से अपनी हस्तरेखाएं स्वयं गढ़ते थे।
40. ईश्वर से प्राप्त मानव जीवन को जीने और संवारने की कला में विरले ही लोग पारंगत हो पाते हैं।
41. अकेला दीपक बाती के विना अधूरा है।
42. लेखनी से समाज का मार्ग प्रशस्त, बुराइयों का पर्दाफाश और अच्छाइयों का झण्डा गड़ता है।
43. संस्था की वर्तमान संचालिका उर्मि (कृष्ण) जी सहनशीलता, दया, परोपकार और सेवा भावना की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।
44. जैन साहब जीवन के सभी मोर्चों पर अपराजेय ''वन मैन आर्मी'' थे।
45. उनकी जीवन्तता, संघर्षशीलता, दृढ़ आत्मविश्वास व मिशनरी भाव से प्रायः अभिभूत होना पड़ता था।
46. जहां आप पहुंचे छलांगे लगाकर, वहां मैं भी पहुंचा, पर धीरे-धीरे।
47. यह सच है कि सृजनशीलता जन्मजात होती है, मगर यह भी उतना ही सच है कि नवोदितों को उचित दिशा-निर्देश देकर उनकी रचनाशीलता को परिमार्जित किया जा सकता है।
48. वे किसी काम को छोटा या बड़ा न समझकर अपने सहयोगियों को पूरा सम्मान दिया करते थे।
49. उनकी कथनी व करनी में लेशमात्र भी फर्क नहीं था।
50. वनौषधीय वृक्ष भगवान् शंकर की तरह प्रदूषण का विष पीकर हमें प्राणवायु या अमृत पिलाते हैं।
51. पेड़-पौधे हमें जीवनी शक्ति व ब्रह्माण्डीय ऊर्जा संग्रह करके प्रदान करते हैं।
52. वनौषधियां एक विशेष योनि है।
53. हम धरती पर वनौषधियों के अतिथि बनकर जीवित हैं।
54. वनौषधियां हमारे लिए आरोग्य प्रदान करने में और पर्यावरण को सुधारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
55. प्रकृति से प्रेम ही पर्यावरण की सुरक्षा का मूलमन्त्र है।
56. जिनमें लिखने की प्रतिभा है पर किसी कारण वे अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकते, उनकी मदद के लिए मैंने यह संस्था खोली है। (डॉ. जैन)
57. संस्था से वह प्रसिद्ध तो हुए पर अपने गुजारे के लिए भी वह पूरा पैसा नहीं कमा सके। (सर्वभूतहितरत)
58. सूचना को सही व सम्वेदन के साथ व्यक्त करना ही पत्रकारिता या

रचनाकारिता है।

59. श्री हरिवंश राय बच्चन के द्वारा पढ़ने को दी गई किपलिंग की एक कविता (साहित्य) के असर से आपात् काल के बाद चुनाव हारने पर भी श्रीमती इन्दिरा गाँधी फिर से एक नई ऊर्जा के साथ अपने कार्यक्रमों में जुट गई थी।
60. साहित्य का असर होता है।
61. जैन साहब ने अपनी शारीरिक अक्षमता का अनुचित बखान करके कभी दयाभाव प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया (महानता)
62. विज्ञान और दर्शन के क्षेत्रों में विश्व के दस में से नौ खोजों का पता अनुसंधान कर्ताओं को उसी समय लगा जब वे तड़के 2 से 5 बजे के बीच में आराम से लेटे हुए थे।
63. मोटी–मोटी ज्यादा पुस्तकें पढ़ने की बजाए जीवन को देखने और समझने की कोशिश ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।
64. आम जिन्दगी जीने वाले छोटे–छोटे लेखकों की साधारण पुस्तकें पढ़ते–पढ़ते उनके सत्यों को आत्मसात् करने का प्रयास करके उन्हें अपने अनुभवों के निकटतम प्रतीत किया जा सकता है।
65. सकारात्मक नजरिए वाली शुभतारिका के अनुभव किसी के लिए भी मार्गदर्शक बन सकते हैं।
66. डॉ. जैन के अनुसार जिस तरह डाक्टर और इंजीनियर बनाए जा सकते हैं, उसी तरह प्रशिक्षण देकर लेखक आदि कलाकार भी बनाए जा सकते हैं। (सुप्त प्रतिभा को जगाना सम्भव है)
67. उनके समय (1964) के महान लेखक श्री जैनेन्द्र कुमार, श्री हरिवंशराय बच्चन, श्री गुरुदत्त ओर श्री विष्णुप्रभाकर आदि उनके ऊपरोक्त विचार से सहमत नहीं थे। (असहमति भी स्वीकार्य)
68. जैन साहब ने सर्वहिताय जिस मन्जिल की तलाश की वह शून्य और अन्धकार में भटके हुए नए लेखकों के लिए रोशनी बन गई।
69. भारतीय समाज का राजनैतिक गठन उसकी आत्मा (सर्वजन सुखाय) के अनुरुप होना चाहिए।
70. हमारे देश के वर्तमान नेता व अफसर अपने स्वार्थ के लिए देश और मनुष्यता दोनों को बेच सकते हैं।
71. हर जिम्मेदार नागरिक में सहनशीलता के साथ–साथ सात्विक रोष (राम की तरह) का अंश भी रहना चाहिए।

72. यदि आपने कहानी लेखन महाविद्यालय का नाम नहीं सुना, तो आप साहित्यकार नहीं हैं।
73. पत्राचार के माध्यम से शिक्षा और लेखन कला को सिखाने वाला यह देश का पहला संस्थान है।
74. डॉ. जैन आखिरी सांस तक मन से युवा तथा किसी लीक से न चिपककर नए विचारों को आत्मसात् करते रहे।
75. वे मजबूत इरादों के मालिक थे तथा दोहरे मापदण्ड के एक दम विरुद्ध थे।
76. पीठ पीछे की बुराई, बनावटी बातों और चापलूसी से हमेशा दूर रहते थे।
77. वे सबकी सहायता और प्रगति के अभिलाषी थे।
78. यदि हम अपने आस–पास के लोगों का भला करना आरम्भ कर दें तो एक ऐसा नेटवर्क तैयार हो जाएगा जो सदैव आपका भला करने में जुटा रहेगा।
79. वे अपनी कोई गलती माफ नहीं कर पाते थे।
80. अगर हर काम कायदे से किया जाए तो कोई मुश्किल नहीं होती।
81. परिश्रम और नियम सफलता के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं।
82. एक पुस्तक भण्डार एक शहर की आत्मा की धार होती है।
83. इन्टरनेट या गूगल से हमारा सम्वाद नहीं हो सकता।
84. जैन साहब की विश्व की श्रेष्ठ कहानियां विश्व के विभिन्न देशों की संस्कृतियों का परिचय कराती हैं।
85. उनकी मोपासा की कहानी से आज के फ्रांस की खराब हालत के कारण का पता चलता है।
86. गूगल या इन्टरनेट हमारी आत्मा को गिरवी कर सकता है।
87. डचकवि रुडी को जब वहां की सरकार ने राष्ट्रीय पुरस्कार के लिए आमन्त्रित किया तो उसने कहा कि मैं सरकार के लिए नहीं लिखता। (राष्ट्रीय स्वाभिमान की सीख)
88. जाओ लेटो बगीचे में
घास की खाली जगह में
मैं घास की खाली जगह हो जाऊं
किसी की हमेशा के लिए। –रुडी
89. मुलाकात से सामने वाले व्यक्ति के जीवन का मन्त्र (तरीका) प्राप्त हो जाता है।
90. हर आदमी अपनी अक्षमता (कमी) को स्वाभिमान से पीछे ठेल सकता है।
91. जब सपने में ही कुछ खाना हो तो चने क्यों, बादाम क्यों न

खाओ–यानी कम से कम सपने तो ऊंचे देखो।

92. जो कोई सीखना चाहता है, उसे विना शुल्क के भी सिखाया जा सकता है। (ज्ञानदान में उदारता)
93. पी.एच.डी करने के बाद डॉ. साहब की सोच काफी बहुमुखी और बहु–आयामी हो गई थी।
94. उनकी एक व्यक्ति से संस्था में परिवर्तन होने की लम्बी दास्तान है।
95. बुद्ध का धर्म बुद्धि, प्रेम और करूणा का जागरूक धर्म (मध्यमार्ग) है।
96. भूखी प्यासी निर्धनता और अनावश्यक धनाढ्यता से लोग त्रस्त हो जाते हैं।
97. धर्म का सम्बन्ध हमारे चित्त के विकास से है।
98. जब तक संसार में एक भी प्राणी कष्ट में है, मैं अपने लिए मुक्ति को स्वीकार नहीं करूंगा। (भगवान बुद्ध)
99. शुभतारिका पत्रिका ''मेघदूत'' की तरह नदी, पहाड़ों, देश, प्रान्तों और नगरों के पार जाकर मानवता का सन्देश देने का प्रयत्न करती है।
100. साहित्य से भला तभी होता है, जब वह मानवोन्मुखी या मनुष्य का निर्माता हो।
101. मनुष्य के मानवतापूर्ण गुण ही रचना की गरिमा होते हैं।
102. रात कितनी भी काली हो, सुबह होगी जरूर।
103. देखते रहिए, धैर्य से हर स्थिति बदलती है।
104. शून्य और पूर्ण एक ही नाम है, जो संसार का सबसे बड़ा सत्य है।
105. जीवन के पार (पूर्णस्वतन्त्र) हो जाने का लक्ष्य केवल भारत का अनुदान है।
106. अमृत उस दशा का नाम है जहां न मृत्यु आती है और न जीवन आता है।
107. जीवन का लक्ष्य है, जीवन और मृत्यु के पार हो कर (परिवर्तन शील दुनिया का) द्रष्टा या साक्षी हो जाना।
108. जीवन और मृत्यु की सीढ़ियों पर पैर रखो और पार या निर्द्वन्द (स्वतन्त्र) हो जाओ।
109. जिस (मृत्यु) से बचा न जा सके, उससे बचने की कोशिश न करो।
110. जो है, उसे स्वीकार करो।

!! जयतु सोलन भारती !!